प्रत्यूष की भटकी किरण

यायावरी

१९४३१
५९२५

रामेश्वर शुक्ल अंचल

कवि के अन्य काव्य-संकलन :

प्राथमिका, किरण-बेला, करील,
लाल-चूनर, वर्षान्त के बादल,
विराम-चिह्न ।

प्रत्यूष की भटकी किरण यायावरी

❀

रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

उ. दिल्ली एवम रेलवे
कल्याणी रेलवे स्टाफ
पुस्तकालय

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
वाराणसी-१

८९.६३१
श्री ६२५

प्रथम संस्करण : मार्च १९६४

मूल्य : ३.००

प्र. दिल्ली स्कूल ऑफ
इकनामिक्स लाइब्रेरी

प्रकाशक :
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
सी २१/३०, पिशाचमोचन
वाराणसी-१

मुद्रक :
विद्यामंदिर प्रेस (प्रा.) लि.
डी. १५/२४, मानमन्दिर
वाराणसी-१

नयी कविता के प्रेरणाप्रद कृती कवियों

को

डा. जिल्ली एमन रेड्डी
हत्यापी रेड्डी स्मारक
पुस्तकालय

अनुक्रम

क्रमांक		पृ. सं.
१. चुप रहो	...	१
२. अनकही अनुगूँज	...	३
३. सोचता हूँ...	...	५
४. कितनी देर लगी	...	७
५. काफिला	...	९
६ फिर तुम्हारे द्वार पर...	...	११
७. केवल इतना दाह मुझे दो	...	१३
८. कल तलक	...	१५
९. स्वप्न तो ऐसा घिरा है...	...	१७
१०. मन का डर	...	१९
११. ओ गीतो के याचक !	...	२०
१२. मुझसे कितना प्यार तुम्हें है !	...	२१
१३. वर्तिकाओं की सिहर में	...	२४
१४. संध्या-गीत	...	२६
१५. ओरे अन्तर्मन के मालिक !	...	२७
१६. मन की मादकता न गई	...	२८
१७. चंदन के हैं पंख तुम्हारे	...	२९
१८. रीति यह कैसी तुम्हारी !	...	३१
१९. कवि-प्रेरणा	...	३३
२०. फूल की वेदना	...	३५
२१. दास बनकर रह गया	...	३७
२२. उलहना	...	३९
२३. घर की सफाई के बाद	...	४१
२४. किस तरह...	...	४३
२५. कहीं ऐसा न हो...	...	४४
२६. मैं तेरा कवि !	...	४५
२७. विस्मय	...	४६
२८. प्रियतम लौट गए	...	४७
२९. पुकार	...	४९

क्रमांक		पृ. सं.
३०. बचा क्या है ?	...	५१
३१. पुनर्मिलन	...	५२
३२. इतना सहने पर भी...	...	५३
३३. तुम्हारी याद	...	५५
३४. मृग-तृष्णा	...	५७
३५. मोड़ हैं अनजान...	...	५८
३६. आना-जाना जरूर पंछी साँवरिया !	...	५९
३७. रस के बूँदा परैं	...	६०
३८. पुकार	...	६१
३९. मैं हूँ केवल याद तुम्हारी	...	६२
४०. तुमने धरती को पावस के अगणित पंख दिये !	...	६३
४१. प्रतीक्षा	...	६४
४२. तुम से न कहें तो किससे कहें !	...	६५
४३. क्या हुआ !	...	६६
४४. नारी	...	६८
४५. प्यास लगने के बहाने	...	७०
४६. स्वप्न और सत्य	...	७१
४७. सो रहो	...	७२
४८. विश्वास	...	७४
४९. छलिया चाँद	...	७६
५०. दीप-शिखा	...	७७
५१. एक दिन	...	७८
५२. शीर्षकहीन	...	८०
५३. कब कहा मैंने...	...	८२
५४. विपर्यय	...	८४
५५. स्नेह इतना है कहाँ...	...	८५
५६. आ गया छाहें तुम्हारी छोड़कर	...	८७
५७. भूल जाने दे	...	८९
५८. ओ नवग्रह के मनवन्तर !	...	९१

प्रत्यूष की भटकी किरण यायावरी

चुप रहो

चुप रहो ! सौन्दर्य की बहती विजनगंधी हवा
चुप रहो ! सन्दर्भ से टूटे स्रजन की शर्वरी
दूर अनजाने अनिद्रित कूल की भीगी हुई
चुप रहो ! प्रत्यूष की भटकी किरण यायावरी ।

चुप रहो ! नीले कुहासे में डुबोये गीत ओ !
छिन गये हैं छटपटाती आस्था के स्वर सभी ।
विन उगे ही जल गयी अभिव्यक्ति अपने बीज में
चुप रहो ! ओ प्रेरणा के संपुटित अक्षर अभी ।

चुप रहो ! रस के अजन्मे अधबने विश्वास ओ !
रह गया है प्यार का हर लेख जिसका अनपढ़ा ।
चुप रहो ओ मंत्रद्रष्टा अर्थ सारे चुप रहो !
वह गया मन से सदा को कथ्य जिनका अनगढ़ा ।

चुप रहो सप्तर्षि-मंडल के शिखर पर काँप कर
ज्योति के ओ प्रज्वलित आशय, ध्रुवान्तों के धनी !
चुप रहो कातर क्षणों की वन्दिनी अनुभूतियो !
मत मुझे माँगो अनागत की प्रवन्चक रागिनी ।

चुप रहो ! सारे अगम अनुबंध सुधि की राह के
सत्य का सब खून देकर भी रहो विश्रब्ध मन ।
चुप रहो ओ बालुका के स्वप्नपंखी मारुती
चुप रहो वैधव्य में डूबी विवशता के रुदन ।

चुप रहो वनपंखियों की रूपगंधी ओ हवा !
आज तो कुछ भी कहीं कोई नहीं है—चुप रहो।
चुप रहो अनुगूंजते ओ शंखवर्षी बादलो !
गुनगुनाती ओ गुफाओ, कन्दराओ चुप रहो !

अनकही अनुगूँज

हाथ तुमने कब दिया मेरे सृजन के हाथ में,
साथ तुमने कब दिया मेरी किसी अभिव्यक्ति का।
कब दिया आशय किसी मेरे अचीन्हे सत्य को,
अर्थ बनने भी दिया कब अघवनी अनुरक्ति का।
प्रेरणा को था न शब्दों में कहा जाना बदा,
बन न पाया गात भी श्रुति की अजन्मी शक्ति का।

ज्योति तुमने जागने दी कब किसी भी दीप में,
स्वप्न जिसको रात भर स्वर से जलाता रह गया।
बात केवल है उसी छलना भरे आलोक की,
दूर अपने में सिमट जो झलमलाता रह गया।
कब छुआ उसने अँधेरे के घने विश्वास को,
स्नेह की हर साँस में जो डगमगाता रह गया।

बेबुलाये बेकहे तुमने न दफ़नाया कभी,
याद का जो शव अँधेरे बन्द घर में था पड़ा।
क्या न तुमसे कह दिया दम तोड़ती उम्मीद ने,
मौन का उसको सदा अभिशाप था कितना बड़ा।
रिक्त प्राणों की अबूझी अनकही अनुगूँज में,
कथ्य मेरी आस्था का कब तुम्हें कुछ सुन पड़ा।

मैं बुझे मन की अँधेरी रात को भी पी सकूँ,
प्यास मेरे मर्म में तुमने लगाई कब प्रखर।
देखने भी कब दिया दर्पण निराशा का मुझे,
है बिखरती छाँह भी जिसमें दरककर टूटकर।

कब मुझे मिलने दिया अपने सहमते रूप में,
खो गया जो काल की बहती अस्वीकृति से गुजर ।

कब दिया मुझको निकलने वंचना की भीड़ से,
कब भटकने भी दिया जी भर पराई राह में ।
पूजने भी कब दिया मुझको अभावों का कलश,
शून्य की भी अर्चना करने कहाँ थी छाँह में ।
कब दिया मुझको जगाने मन्त्र ममता का मुखर,
बाँध दी कैसी निठुर सौगन्ध उठती बाँह में ।

कब हुई आश्वस्त तुमसे डूबते दिल की नजर,
दाह जीवित है तुम्हारा धड़कनों के पार भी ।
ओस पीकर झूमती जैसे शिरीषों की हवा,
हैं अधूरे गीत की लय में वही झंकार भी ।
केन्द्र तुमने कब दिया मेरी प्रणति के वृत्त को,
फूटती निष्कम्प पाहन से कहीं जलधार भी !

सोचता हूँ.....

सोचता हूँ अब न बेचूँगा लहू हर स्वप्न का
सोचता हूँ अब न खाऊँगा कसम हर गीत की,
दीप बारूँगा न अपनी ही अधूरी क़ब्र पर
स्नेह से साखी न माँगूँगा जलन की रीत की।

सोचता हूँ अब न रक्खूँगा कदम उस छाँह में
खुल पड़ी जो धूप के नीचे घनेरी अनमनी,
सोचता हूँ पास भी आने न दूँगा वह किरण
जो किसी के रूप के गहरे धुँधलके से छनी।

एक भी अब तो न मागूँगा सितारा एक भी
शून्यता से डबडबाती आँख के आकाश का,
सोचता हूँ बेकफ़न मेरा मरा आशय कहीं
भूल कर कन्धा न पा जाये किसी की साँस का।

सोचता हूँ मुँह न देखूँगा कभी उस याद का
थरथराकर भी बिना आये नहीं जो मानती,
टिमटिमाती रात पर सिर से लगा कर पैर तक
जो चिता की राख जैसी स्याह चादर तानती।

सोचता हूँ सत निचोड़ूँगा न अब हर प्यास का
अब कभी सिंचने न दूँगा आस्थाओं का गला,
राह देखूँगा न उसके लौटने की तीर पर
देवता पर बिन चढ़े जो फूल जल में बह चला।

सोचता हूँ अब न दूँगा साथ ज्यादा दूर तक
प्रेरणा के हर कँटीले लौ भरे विश्वास का,
अब न बाँधूँगा सृजन में हर बिंधी आवाज को
राग से बदला न माँगूँगा मरे मधुमास का।

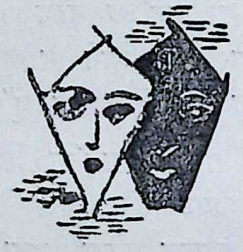

कितनी देर लगी

ओ अबोध मन की तन्मयते ! कितनी देर लगी।
शब्द नहीं उठते, स्वर की गूँजें तो भर आती हैं
साँसों के सन्नाटे में भी ध्वनियाँ उतराती हैं,
धीरज की आँखों में ममता का जल भर भर आता
थकी खड़ी हैरान प्रतीक्षा का अन्तर उफनाता,
ओ मधुमयी प्रेरणे ! तुमको कितनी देर लगी।
रुके अजन्मे पड़े तुम्हारे बिना अर्चना के क्षण
है मेरा विश्वास अभी नादान और चंचल मन,
अपनी ही आशंका से तो कंपित मैं–मेरापन
छोटी मेरी साध, अभी कमसिन है मेरा अर्पण,
तुमको ही तो अर्पित हूँ मैं—कितनी देर लगी।
चुनते चुनते अश्रु प्यार के अपने दीप बुझाये
अपना भेद न जाना पर जगती के भेद भुलाये,
टूटा कितनी बार हृदय, गीतों का तार न टूटा
सूखा फूलों का रस, मन का मधुघट कभी न फूटा,
रह रह जी अकुलाता तुमको कितनी देर लगी।
कितनी देर लग गई तुमको ओ सपनों की गोरी !
है अछोर अवदात तुम्हारे आकर्षण की डोरी,
कितना गहन अँधेरा है, मन कैसा कारावासी
उगती नयी नयी दीवारें, जमती नयी उदासी,
ओरी ! अन्तर्यामिनि तुमको कितनी देर लगी।

आया पिछला पहर रात का अब तक स्वप्न न छूटा
फूटी फूटी लहर चाँद की, तारों का दम टूटा,
इस तम में आकर सूरज भी पड़ जायेगा काला
विना तुम्हारे बुझ जायेगी, किरण-किरण की ज्वाला,
ओ प्रकाश की प्राण ! तुम्हें क्यों इतनी देर लगी

कितनी रात अकेली, जीवन कितना सूना सूना
थके चरण, आवेग अपरिमित, बिना कहे दुख दूना,
मेरा राग उड़े—प्रतिकल्पी शिखरों को छू-छू ले
विना तुम्हारे कैसे मन अनवधि उत्सुकता भूले,
ओरी रस-आवेशिनि ! तुमको कितनी देर लगी ।

डूबे काले घने समय में दिन के दिये हँसेंगे
बौराये भरमाये मेरे संशय मुझे डसेंगे,
बिना कहे सामीप्य तुम्हारा, मैंने सदा पिया है
विन देखे बिन पाये तुमको सदा समेट लिया है,
ओ मेरी अरुणाभे ! तुमको कितनी देर लगी ।

मुझसे रहा न जाता तुमको पल पल बिना बुलाये
सदा असंख्य वसन्तों के सौन्दर्य तुम्हें पहनाये,
अपनी भूल-भूल में मैंने तुमको ही दोहराया
सच लगने वाली छलना ने सदा तुम्हीं को गाया,
ओ पुन्यायन सुषमे ! तुमको कितनी देर लगी ।

काफ़िला

काफ़िला आगे बढ़ा जब रक्त-रंजित राह से
झिलमिलाती दूर मंजिल की कसम खाये हुए,
धूल मुड़-मुड़ कर उसी को देखती उड़ती रही
रह गये अवरोध के अंधड़ क़हर ढाये हुए।

थरथराकर रह गयी तपती दुपहरी की जलन
रह गयीं किरणें दहकती आग के शोले लिये,
भूत बनकर रह गया मध्याह्न का सूरज खड़ा
रेत की लू के बगूले रास्ता रोका किये।

रंग प्याजी पड़ गया झुलसे हुए आकाश का
बादलों को बीनकर जैसे लुवारें खा गयीं,
हर दिशा तंदूर-सी फुंकती धधकती रह गयी
हर हवा की साँस बरछी की अनी चमका गयी।

काफ़िला आगे बढ़ा फिर भी इसी सैलाब से
और गुजरेगा इसी लावा उगलती राह से;
छातियाँ भुनकर पहाड़ों की पड़ी रह जायँगी
काफ़िला बढ़ जायगा होकर इसी दिग्दाह से।

दूर होती जाय मृगजल की छली मंजिल सदा
आँख से मरु का अकाशी दीप ओझल हो चले,
हमसफ़र नभ के सितारे प्राण चाहे छोड़ दें
राह में लुट जाय, कुचला जाय धोखे से भले।

नाम रुकने और मुड़ने का नहीं लेता कभी
काफ़िला हर याद में लेकर बसेरा चल पड़ा,
हर दुराशा गीत की आवाज देती है उसे
हर थकन में प्रेरणा के स्वप्न का डेरा खड़ा।

फिर तुम्हारे द्वार पर.....

दो सज़ा मुझको असंयत कामना के ज्वार पर,
बिन बुलाये आ गया मैं फिर तुम्हारे द्वार पर।

—१—

दो सज़ा मुझको—गड़ाऊँ आँख चरणों पर कभी
अनसुनी कर दो मिलन की धड़कनें मेरी सभी,
तुम अनुत्तर बन सदा मेरी पुकारों से बचो
अब न तुम मुझमें नये विश्वास का सपना रचो,
प्राण पर मेरे तुम्हारी ही छलक छाई हुई
चेतना मेरी तुम्हीं में डूब उतराई हुई,
पंख-अधकतरा पखेरू चन्द्रमा से होड़ ले !
चाहता आकाश का नीला सितारा तोड़ ले !
तुम न मिटने भी मुझे दो अनगहे आधार पर,
बिन बुलाये आ गया मैं फिर तुम्हारे द्वार पर।

—२—

दो सज़ा मुझको तनिक जो आस्था मेरी गले
मर गयी जो ज्योति घुलघुल कर अगर फिर से जले,
दो सज़ा यदि मैं तुम्हारी छाँह को भी प्यार दूँ
यदि तुम्हारे संगदिल को एक भी झंकार दूँ,
यदि प्रकम्पित कण्ठ से कुछ पास आने को कहूँ
मैं तुम्हारी एक भी मुस्कान पाने को कहूँ,
दो सज़ा मुझको तुम्हारा नाम होंठों से चुए
हाथ भी मेरा तुम्हारी बादली वेणी छुए,

चढ़ चुका अपनत्व सब मेरा पराई धार पर,
बिन बुलाए आ गया मैं फिर तुम्हारे द्वार पर।

—३—

दो सजा मुझको कहूँ तुमसे मुझे बूझो तनिक
वेदनाओं की विपुलता में तुम्हीं सूझो तनिक,
दो सजा तुमसे तनिक भी शक्ति ले जीवित रहूँ
यदि तुम्हारे आसरे दुख की तरंगों में वहूँ,
आँसुओं में भी कभी माँगूँ सहारा स्नेह का
स्वप्न भी देखूँ तुम्हारी देवदुर्लभ देह का,
मैं तुम्हें बाँधूँ तरसती चितवनों में निष्पलक
दो सजा पीता रहूँ मधु स्वर तुम्हारा देर तक,
गीत लिखने को तुम्हारे दर्प की दीवार पर,
बिन बुलाये आ गया मैं फिर तुम्हारे द्वार पर।

—४—

मूँद दो दोनों नयन, दम तोड़ दो मेरा अभी
दो मुझे तुम दण्ड, है स्वीकार सिर माथे सभी,
मैं तुम्हारे रूप का उन्माद तन-मन में भरे
मैं तुम्हारी वज्रता का दर्द छाती में धरे,
यदि तुम्हें पीने लगूँ अपनी समूची प्यास भर
दो सजा मुझको—न सहने में रहे कोई कसर,
दो सजा यदि मैं तुम्हारा मन बहुत-सा घेर लूँ
दो सजा कुछ भी तुम्हारी मानता यदि फेर लूँ,
पूजता तुमको सुलगता दिल इसी अधिकार पर,
बिन बुलाये आ गया मैं फिर तुम्हारे द्वार पर।

केवल इतना दाह मुझे दो...

केवल इतना दाह मुझे दो सह पाऊँ जो विना लिख ।

मेरी अन्ध वन्दना से तुम सचमुच नहीं पिघल जाना,
कभी न मुझ पर करुणा करना, कभी न सपनों में आना,
मत टिकने देना तुम अपनी छाया मेरे दर्पण में,
अपनी एक किरण से भी कम देना मुझको अर्पण में ।
मेरा दर्द रहे नित जीवित—तुम केवल इतना करना,
अपनी छवि की एक चमक से भी कम तुम मुझमें भरना,
धीमा करदो तुम अपना सौन्दर्य प्रखर मेरे मन में,
मद्धिम करदो अपनी छवि की आभा मेरी चितवन में,
केवल इतनी ज्योति मुझे दो जलता जाऊँ विना दिखे ।

खत्म न होने पावे मेरी बात कभी इस जीवन में,
बिक जायें सब सपने मेरे भले तुम्हारे चिन्तन में,
कभी न कंपित हो मेरा विश्वास तुम्हारे अर्चन में,
चुके न मेरा प्यार, कभी स्वर चुकें न मेरे वन्दन में,
केवल इतना स्नेह मुझे दो बुझते-बुझते रुक जाऊँ
पूजा में प्रतिरोम जलाकर भी मैं कभी न चुक पाऊँ,
मेरी कच्ची, दूधभरी अभिलाषा मत पकने पावे,
मेरी जूठी प्रीति न तुमको जीभर कर तकने पावे,
रहने दो सुधि, भूल न पाऊँ कटुता के सब सत्य सिखे ।

रहने दो सब याद मुझे छलना की ज़हरीली साँसें,
मेरे भीतर बन्द पड़ीं कितने अरमानों की लाशें,
केवल इतनी घृणा मुझे दो—केवल इतना उत्पीड़न,
कभी न कह पाऊँ मैं अपने भीतर का तेज़ाब-दहन,
ओ अपराजित रूपमयी ! बस इतनी हार मुझे देना
टूट-टूट कर भी तुम मुझको टेक नयी गढ़ने देना ।
केवल इतना दंश मुझे दो मैं असहाय न हो जाऊँ,
मैं अपने से उखड़-उखड़ कर गिरूँ न धरती पर आऊँ,
केवल इतना दाह मुझे दो सह पाऊँ जो बिना लिखे ।

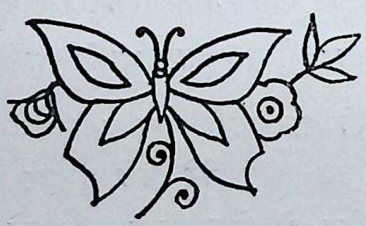

कल तलक

कल तलक मैं था तुम्हारी मुग्ध साँसों से सटा
आज लगता है तुम्हारी धड़कनों से दूर हूँ,
गीत जैसी थी तुम्हें कल तक मधुर मेरी नजर
आँख से गिर कर तुम्हारी आज चकनाचूर हूँ;
ये परायापन–विषमता से भरी ये दूरियाँ
ये निगाहों की तरस, सचमुच वड़ा मजबूर हूँ !

चीरकर कैसे दिखाऊँ आत्मा अपनी तुम्हें
हो कलेजा किस तरह दो टूक मेरे प्यार का,
किस तरह पाऊँ कलंकित वेदिका पर शाप की
छिन गया जो पुण्य पूजा के सतत अधिकार का;
किस तरह पाऊँ सहारा जो सरासर लुट गया
मैं तुम्हारे खो गये विश्वास के आधार का !

कल तलक मुझको तुम्हारी छाँह की सौगन्ध थी
थीं मुझे घेरे तुम्हारी प्रीत की परछाइयाँ;
कल तुम्हारी राह तकती थी कड़ी हर गीत की
थीं तुम्हीं में लीन मेरे भाव की गहराइयाँ;
आज तो तुमने मुझे इतना अकेला कर दिया
काँपती है आज मुझसे ही मेरी तनहाइयाँ !

रूप में अपने मुझे कल तक जकड़ जाने दिया
देखने प्रतिक्षण दिया सपना मिलन की आस का;
थी न जीवन में तनिक पहचान भी जिस तृप्ति से
भर दिया उससे खुला दामन हृदय की प्यास का;
गन्ध बाकी है अभी तक उस जले मधुमास की
आज रोता है कफ़न तक उस मरे उल्लास का !

कल तलक मैं था तुम्हारे कर्णफूलों में बसा
आज मेरे स्वर वहाँ तक झूल कर जाते नहीं;
यों बुलाता हूँ तुम्हें अक्सर उसी आवाज से
आज तुम पर वन्दना के बोल चढ़ पाते नहीं;
कँपकँपी में टूट कर आशय बिखर जाता जहाँ
प्राण ये असहायता में मूक अकुलाते वहीं !

ये खिंची सीमा, झुके फैले हुए ये फ़ासले
आज लगता है तुम्हारी चितवनों से दूर हूँ;
यह अबूझी अनमनी डूबे सितारे-सी हँसी
साफ कहती है तुम्हारी पुलकनों स दूर हूँ;
क्यों न मेरा सुधि-भरा मन खींच पाता है तुम्हें
यह तुम्हारी स्तब्धता—सचमुच बड़ा मजबूर हूँ !

स्वप्न तो ऐसा घिरा है...

स्वप्न तो ऐसा घिरा है, जो न जीवन में समाता,
दर्द ऐसा है न जो उठता वरन मुझको उठाता,
याद ऐसी है—न आकर ले मुझे जाती तुम्हीं तक,
खुद न खिंचकर खींच देती है मुझी को जो तुम्हीं तक ।

प्यास तो ऐसी लगी है पी रहा प्रत्येक क्षण में,
चाह तो ऐसी जगी है, जो न सोएगी मरण में,
दे दिया मुझको तुम्हारी याद ने ऐसा भरोसा,
स्नेह खोकर भी पलूँगा मैं तुम्हारी ही शरण में ।

प्ररणा ऐसी जली है ज्योति जिसकी दूर छाई,
एक भी जिसकी चमक मुझको न अब तक दी दिखाई,
है सिहरता भाव ऐसा हो लहर ज्यों दूर तट से,
काँपता ज्यों स्वर बिछुड़कर ताल की मीठी लिपट से ।

मैं न सुन पाता तुम्हारे प्राण की कोई रुलाई,
देखता कब मैं तुम्हारे रूप की कोई उँचाई,
छू नहीं पाता तुम्हारे स्वर्णरंगी पग-तलों को,
कब लगा पाता अधर से मैं तुम्हारे कुन्तलों को ?

प्यार कुछ ऐसा सहमता है कि जैसे अधबना हो,
बात तक दिल की मुझे तुमको सुनाना भी मना हो,
पाप ऐसा है कि सब पूजा अजन्मी रह गई हो,
उमड़ तो ऐसी कि डूबी चेतना सब बह गई हो ।

बेसुधी ऐसी न दे पाता तुम्हें मैं मान आदर,
जगमगा उठता महज़ पाकर तुम्हें—होता उजागर,
हो रहा विश्वास तुमको ही सदा मैंने बुलाया,
मैं तुम्हारे पास पहले भी कभी तो और आया।

मन का डर

तेरी याद कहीं मेरी रातों की मधुता लूट न ले,
तेरा स्वप्न कहीं मेरी सारी तन्मयता लूट न ले,
देखा तो करता हूँ तुझको पर रह रह कर लगता है,
तेरा साथ कहीं मेरी सहमी चेतनता लूट न ले।
तेरा मौन कहीं मेरे स्वर की चंचलता लूट न ले,
घिरी थमी पलकें मेरी जलभरी तरलता लूट न लें,
तेरी फीकी हँसी, अटकती चितवन मुझे रुलाती है,
तेरी घनी अनमनी मेरी भावाकुलता लूट न ले।
मेरी बैरिन आस कहीं विश्वास तुम्हारा लूट न ल,
मेरा अविनाशी पतझड़ मधुमास तुम्हारा लूट न ले,
मैं अभिशप्त युगों का जैसे जनम-जनम का दुर्भागी,
मरा साथ कहीं उज्ज्वल उल्लास तुम्हारा लूट न ले।
तेरा भाव अधखुला मेरे गीतों का रस लूट न ले,
तेरा दर्प अधमुंदा मेरे सुखका सरबस लूट न ले,
डूब डूब कर मिट जाने की मेरी सूजी प्यास कहीं,
मेरी साँसों का कुचले जाने का साहस लूट न ले।
तेरा प्यार नियति की मेरी सब निर्ममता लूट न ले,
तेरी सुषमा की छबि मेरी सब निर्धनता लूट न ले,
तुझसे मिल कर पूर्ण न बन पाया तो मेरा क्या होगा?
तेरा तेज कहीं मुझसे मंजिल की ममता लूट न ले।

ओ गीतों के याचक !

विना कभी कुछ दिये किसी को यों हरदम भरमाना क्या !
ओ गीतों के याचक ! मुझ को इतने पास बुलाना क्या !
कहते हो—बुझने के पहले जी भर कर जल लेने दो,
अपने अकुलाए तन-मन को जी भर कर छल लेने दो ;
मैं कहती हूँ—रोज अनामी सुख की बात सुनाना क्या,
जो न हमारे बीच उगा उस रस को रोज बढाना क्या !
ओ गीतों के भिक्षुक ! तुम में प्यार कहाँ अब शेष रहा,
अब न तनिक तुम में बाकी मधु का सुरभित उन्मेष रहा,
और अभी मैं हूँ ही कितनी, मैं जानूं तरसाना क्या,
जान सकी कब भला किसी के सपनों में मंडराना क्या !
गूँजभरी चितवन लेकर प्राणों में सिमट समाना क्या,
नहीं जानती अभी किसी की साँसों से सट जाना क्या,
हूँ ही कितनी जो मैं जलते दिल की सब बातें जानूँ,
इतनी नीरभरी हूँ, कैसे प्यास किसी की पहचानूँ ?
मुझ से माँग रहे हो—इतनी स्वर की भीख कहाँ लोगे,
ओ अवसन्न भिखारी ! कैसे तुम इतना सुख झेलोगे ?
है घायल व्यक्तित्व तुम्हारा, कैसे ठंडक पाओगे,
ओ गीतों के याचक ! कब तक मुझसे गीत रचाओगे ?
आखिर मैं बेमन से तुम को कब तक हरदम याद करूँ,
मानूँ बात तुम्हारी, शब्दों में झूठे संवाद भरूँ !
मुझ में कुछ अनूभूति जगाए बिन मुझको उकसाना क्या,
चन्दा की नकली छाहों से कुमुदी को बहलाना क्या !
ओ मधुता के मंगते ! तुमने अब तक मुझ को जाना क्या,
इतने पास न खींचो, सोचेगा बेदर्द ज़माना क्या !

मुझसे कितना प्यार तुम्हें है !

मुझसे कितना प्यार तुम्हें है जान गई मैं जान गई,
अपनी पुलक-प्रभा में तुम को मैं कब की पहचान गई !

कभी नहीं सोचा था—तुम को मैं इतनी भा जाऊँगी,
भीतर तुम में घुला करूँगी, बैठी दूर लजाऊँगी,
मैं निस्तब्ध निशा-सी अब तक जीवन में सोती आई,
अब तक बादल के महलों में भूली-भटकी भरमाई ।

भीतर के अनकहे भाव सब बिना कहे खुलते जाते,
भीतर के अनसहे शूल आँखों में जल बन भर आते,
तुमने समझा दी कितने अनगाने गीतों की भाषा,
रोम-रोम में लिख दी कैसे सगे स्नेह की परिभाषा ।

जनम-जनम की जकड़ी मेरी जड़ता तुम को मान गई,
अपनी पुलक-प्रभा में तुम को मैं कब की पहचान गई !

लगता कितनी गूँज चुरा लूँ रोज तुम्हारे स्वर से मैं,
कितनी गन्ध बहा दूँ बाहर मधुवासित अन्तर से मैं,
कब लौटा दोगे तुम मुझको मेरे मन की हरी थकन,
मुझे नहीं वापस दोगे क्या मेरे प्राणों की ठिठुरन ?

यह कैसा उल्लास कि करता है तन-मन प्रतिक्षण थरथर,
यह कैसा उच्छ्वास-भरा चैती अमराई का मर्मर,
यह कैसा अभिसार कि जिसके वरदानों का अन्त नहीं,
यह कैसा आकाश कि जिसकी छवि का कहीं दिगन्त नहीं !

सुख की शरमाई लहरों में मैं बहती अनजान गई,
अपनी पुलक-प्रभा में तुम को मैं कब की पहचान गई !

खोले मेरे भेद मुझी से तुमने फूलों में रँग कर,
बोल उठीं दीवारें मेरी मेरे मधु से अकुला कर,
जीवन की बिखरी-बिखरी अभिव्यक्ति सिमट कर बढ़ आई,
जैसे दर्पण में किरणों की धूप उजल कर मढ़ आई ।

सहने दो यह तृप्ति मुझे तुम धीरे-धीरे सहने दो,
जो न अभी कह पाऊँ तुम से मत जल्दी में कहने दो,
इतनी ममता से मत देखो मेरे झुके रुके मुख को,
मिले तुम्हारे सम्मुख भी एकान्त सदा मेरे सुख को !

तुम से बच बच कर अब तक कितनी सूनी सुनसान गई,
अपनी पुलक-प्रभा में तुम को मैं कब की पहचान गई ।

आई मैं ही पास तुम्हारे—तुम तो दूर रहे आए,
अब मैं दूर रहूँ, भी कैसे जब तुम इतने मँडराए,
मैं सोचा करती थी मुझ को कोई प्यार करेगा क्या,
प्यार करेगा भी तो मुझ में ऐसा रूप भरेगा क्या ?

मैं चुप्पी थी फिर भी गाए जाने को था जी करता,
अपने को ही छूने में जैसे था मेरा जी डरता,
गूँथ दिए मेरे केशों में इतने बौर मलय के क्यों ?
बाँध दिए मेरे प्राणों में इतने कंपन लय के क्यों ?

तुम में अँट अँट कर भी तो मैं ज्यों की त्यों वीरान गई,
अपनी पुलक-प्रभा में तुम को मैं कब की पहचान गई !

धीमी कर दो चाह, तनिक आवाज धड़कने दो दिल की,
डूबे रहने दो सब सपने, आशा पलने दो दिल की,
व्यक्त नहीं होता जो वह भी तो सुधि में सहमा करता,
सोचा जाता हो न भले, पलकों में नित्य रमा करता ।

आखिर मेरे सूनेपन से भला तुम्हारा क्या नाता ?
जो मनकी अनकही समझता कभी न उसको दोहराता ?
बाहर उड़ते बोल--इन्हें मन पाए भी तो क्या पाए
थमते नहीं मिलन के घंटे जैसे क्षण भर को आए !
मेरे हाथ नहीं आती मेरी छाया विश्वासमयी !
अपनी पुलक-प्रभा में तुम को मैं कब की पहचान गई !

वर्तिकाओं की सिहर में

है मिली पूजा सभी दिन जिन्दगी के बन्द घर में,
है मिली श्रद्धा निरन्तर रुद्ध जीवन की डगर में,
अर्घ्य कितना चढ़ चुका है वर्तिकाओं की सिहर में,
है मिला कितना पुजापा वेदना के सिक्त स्वर में !

मत कहो मुझसे कि मैं केवल बनूं पत्थर तपन का,
शून्य में गूँजा करूँ, वह गीत आकाशी पवन का,
बस धुआँ देखा करूँ अपनी सुलगती वर्जना का,
देख भी पाऊँ न मैं सौन्दर्य अपनी प्रेरणा का !

जानता था दर्द मैं पहचानने के पूर्व तुम को
कर चुका था चाह भी अनुमानने के पूर्व तुम को,
कब लगा मुझ को कि मेरी राह मुश्किल है अजानी,
पर न उभरे प्रश्न इतने छोड़ कर जलती निशानी ।

दो मुझे वह सब कि था जिसके बिना मैं दग्ध पाहन,
मत कहो मुझ को अकल्पित पूर्णता का पुण्य पावन,
दो मुझे तुम दाह दुख का, दो मुझे अवसाद बेकल,
दो मुझे सुख से सिहरती याद अपनी याद निर्मल !

बिन गुँथे भी प्राण को जो प्राण देता है धरोहर,
बिन बँधे भी बाँह को जो बाँह देती है उमड़ कर,
बिन मिले भी साँस देती साँस को जो पास आ कर,
गीत देता गीत को जो लयभरा विश्वास पा कर !

दो मुझे वह सब कि देता स्वप्न को जो स्वप्न सिंचकर,
जो अधूरे वृत्त को देता अधूरा वृत्त खिंचकर,
मत मुझे अभिशप्त गिरि का देवता कह कर पुकारो !
तुम न मेरी ओर इतनी अर्चना ले कर निहारो !

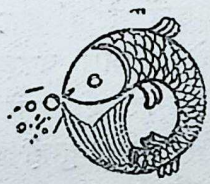

संध्या-गीत

रुको दो क्षण, आखिरी चितवन तुम्हें दे दूँ मिलन की
रुको दो क्षण, आखिरी धड़कन तुम्हें दे दूँ लगन की
रह न जाये पास मेरे एक भी कम्पन तुम्हारा
रुको दे दूँ डूबता दिन, साँझ मेंहदी की किरण की
रुको, दे दूँ फूल-से सब काँपते सुख के शरारे
बाँध दूँ कल का निमंत्रण रुद्ध चरणों में तुम्हारे
क्यों न लौटा दूँ सिहरते भाव जो दिन भर घिरे थे
रुको, दे दूँ आज दिन भर के जिये सुख-स्वप्न सारे
रहो तो दो क्षण, तुम्हें दे दूँ हवा में गूँजता सब
मंत्र जैसा प्राण को प्रतिक्षण जकड़ता कीलता सब
रुको, दे दूँ वे सभी स्वर जो नहीं गूँजे अभी तक
इस मरे दिन का लिये जाओ तुम्हीं आशय अमर सब
रुको दो क्षण, आखिरी मुस्कान देखूँ आज की मैं
श्याम भौंहों पर किरण बुनती अरुणिमा लाज की मैं
और दो क्षण देख लूँ कैसे वहकती है विवशता
और दो क्षण गूँज पी लूँ अनसुनी आवाज की मैं
रूको दो क्षण, मानता तुमको नहीं दूँगा अधूरी
अघवनी जलबूँद मेरी आँख की वन जाय पूरी
क्या तुम्हारा स्नेह मेरा ही सगा, बिल्कुल सगा है
और उतनी ही सगी है क्या हमारे बीच दूरी ?
रुको, केशों में तुम्हारे बाँध दूँ बदली अधर की
अधखुला जूड़ा तुम्हारा मुग्धता देखे लहर की
रुको दो क्षण, आखिरी उमड़न तुम्हें दे दूँ हृदय की
बाँध दूँ अन्तिम कड़ी इस डूबते दिन की विनय की

ओरे अन्तर्मन के मालिक !

फिर मेरे जीवन की नौका चट्टानों से टकराती है
ओरे अन्तर्मन के मालिक ! फिर याद तुम्हारी आती है,
धीरज में डूबी है निष्ठा पर दिल मेरा घबराता है
विश्वास अकंपित है मन का, पतवार मगर कँप जाता है।

धरती पर गिर गिर कर भी तो मैंने सब दिन ऊपर देखा
मेरी साँसों की तृष्णा ने खींची तन्मयता की रेखा,
सपने-सपने में पाकर भी मैंने तुमको कितना खोया,
साकार तुम्हारी करुणा को पाकर भी नित्य जला रोया।

अध्याय नया फिर जुड़ता है मेरे संघर्षों में स्वामी !
मेरी कुचली लघुता तुमको फिर टेर रही अन्तर्यामी !
भय-जर्जर प्राणों की अन्तिम आशा भी डूबी जाती है,
तूफान-थपेड़ों में नौका चट्टानों से टकराती है।

सुख तो ममता ने बाँट लिया पर त्रास नहीं बँटने आता
भयभीत निराशा का मारा विष-दंश नहीं कटने आता,
क्यों इतना कम संकल्प दिया तुमने मुझको मेरे दाता
क्यों मेरी पीड़ित आस्था का उल्लास नहीं स्थिर रह पाता ?

क्यों मेरा अन्तर्भूत अभय यों क्षण-क्षण में चुकने लगता
मेरी अकुलाती आत्मा में क्यों नव आलोक नहीं जगता ?
क्यों ज्ञात नहीं होता मेरी छाती में पौरुष-मेरु खड़ा
क्यों बोध नहीं होता बाहों में महावीर्य का नद उमड़ा ?

फिर मेरे जीवन की नौका चट्टानों से टकराती है !
ओ तेजवन्त ! ओ प्राण-सखा ! फिर याद तुम्हारी आती है!

मन की मादकता न गई

तुमने मना किया पर मेरे मन की मादकता न गई,
तुमने स्थिरता दी पर मेरी सुधि की चंचलता न गई,
तुमने रोका—नहीं रुक रहे फिर भी मेरे कम्पित स्वर,
रह जाते अनसुने तुम्हारे घने अहं से टकरा कर !
करता बारम्बार तुम्हारा ध्यान न फिर भी जी भरता,
इतनी बार तुम्हें देखा पर प्राण नहीं धीरज धरता,
सब कुछ खो कर भी लगता है तुम्हें न कुछ दे पाऊँगा,
बस टूटे अरमानों का बेजान मरसिया गाऊँगा !
तुमने इतनी बार कहा मैं कितना आतुर बेसबरा,
प्रिय, वंचित अवहेलित हो कर भी कब मेरा स्वप्न मरा ?
तुमने मना किया पर मेरी संचित याचकता न गई,
तुम में ही डूबे रहने की बेसुध वंचकता न गई !
तुमने इतनी ज्योति भरी पर छँटा नहीं मेरा बादल,
तुम्हें मनाने का कैसा यह चावभरा है मोह अटल,
तुमसे बहुत सुख लिया मुझसे कण भर लौटाया न गया,
मेरा गीत मुझी से अपने अन्दर दफ़नाया न गया !
दर्प तुम्हारा मुझ को पल भर को भी बाँध नहीं पाता,
मैं अपनी अतृप्त मजबूरी में खुल कर टूटा जाता,
तुम ने कितनी शान्ति मुझे दी मेरी व्याकुलता न गई,
कितना मुझे जगाया मेरी नींद भरी जड़ता न गई ।
इतना पुण्य बहाया तुमने धुल न सका मेरा अन्तर,
तुम से इतना जल पा कर भी मैं हूँ ज्यों का त्यों ऊसर,
घायल हो कर भी अर्पित जीवन की दुर्बलता न गई,
तुम ने इतना बड़ा बनाया पर मेरी लघुता न गई !

चंदन के हैं पंख तुम्हारे

तुम में तन का रूप अधिक है,
या मन का सौन्दर्य अमित ?
तुम में कलिका की मदिरा है,
या प्रसून का मधु सुरभित ?

अंकुर की जीवन-तृष्णा है,
या लतिका का नव यौवन ?
निर्झर का उन्मेष कि मधुऋतु–
की सरिता का चंचलपन ?

मूँगे का है देश तुम्हारा,
या नीलम का नीलाचल ?
हीरे की है खान तुम्हारी,
या मोती का सिन्धु अतल ?

प्यास प्रणयिनी की है या अनुरक्त-
वधूटी की शीला ?
कलिका का कौमार्य अधिक या,
पुष्पों का पराग गीला ?

तुम में दीपक की सिहरन है,
या जुगनू का अन्तर्दाह ?
नीड़ाकुल पंछी की ममता,
या बौराए वन की चाह ?

कवि की जीवनप्रिया कि तुम हो–
पूजा की आखिरी कड़ी ?

हेमन्ती बादल हो या तुम–
शिशिर मेघ की मुग्ध झड़ी ?
चन्दन के हैं पंख तुम्हारे,
सीपी की बाँहें गोरी,
खुली पहाड़ी झील सरीखी–
आँखों में जल की डोरी !
मौन अधिक है या स्नेहाकुल–
मन की है अभिव्यक्ति अमित ?
तुम में तन का रूप अधिक है,
या मन की अनुरक्ति अमित ?

रीति यह कैसी तुम्हारी !

रीति यह कैसी तुम्हारी !
प्राण मेरे ! प्राण मेरे ! प्रीति यह कैसी तुम्हारी !

बन गया बीमार की रातों सदृश सुनसान जीवन
अब नहीं होगा सबेरा—लग रहा हर रात हर क्षण
घिर रहा तम यों कि ढहता मरघटी जल का कगारा
जागती सूनी प्रकृति भी, जागता आकाश सारा
अधजली हर साँस में भी आरती तुमने उतारी !

भूलना उसको कठिन था, याद उसकी थी दुराशा
या उसे पाना असंभव, था बना प्रतिरोम प्यासा
छल गयी हर शाम तुमको, छल गया प्रत्येक बादल
नित तुम्हें छलती रही बिछुड़े पिया की याद चंचल
पर तुम्हें लगती रही विश्वास की हर छाँह प्यारी !

दे सकी तुमको कभी कुछ भी न बदरायी दुपहरी
मृगतृषा तुमको बनी हर आस जीवन की सुनहरी
दर्द-बींधा स्वर तुम्हारा नित रहा उपहास पाता
वेदना की हर सगाई में बसेरा-सा बनाता
क्यों कभी पाषाण-पूजन में सजल तृष्णा न हारी !

एक ही अनुभूति स्नेहाकुल निकटता की मिली जो
स्वप्न-घेरे में उतरते रूप जैसी झिलमिली जो
कल्पना के पास से पाते रहे आश्वास मन का
दूर लहरों की तराई में बजे ज्यों स्वर पवन का
मूर्ति तो बदली, न पर विश्वास का बदला पुजारी !

डा. दिल्ली रमण रेवी
कल्याणी रेवी स्मारक
पुस्तकालय

दूब हर चट्टान पर तुमने हमेशा ही उगायी
दग्ध मन के प्रति मरण को प्रेम की जयध्वनि सुनायी
कंटकों में भी सुधा खोजा कहाँ करते निरंतर
मरुधरा में कोपलों की कामना क्यों की जनम भर
पर न पहुँची भाव तक जैसे कभी अभिव्यक्ति सारी !

कवि-प्रेरणा

न मुझसे दूर होती हो न मेरे पास आती हो,
मुझे तुम क्यों भुलावे में हमेशा डाल जाती हो ?
मेरी रातें तुम्हारे रूप के साये में ढलती हैं,
मेरी साँसें तुम्हारे मौन के नीचे उबलती हैं,
निचोड़ी इस क़दर मेरी तुम्हीं ने नींद आँखों से,
न कोई स्वप्न की सौगात पलकों पर ठहरती है।
मचा कुहराम मेरी चेतना की सर्द बाँहों में,
मुझे आवाज लेकिन क्यों सुनाई तक नहीं देती ?
उभरती हैं उमीदें अधजले दिल के घरौंदे में,
तुम्हारी मोहिनी लेकिन दिखाई तक नहीं देती !
डुबाती हो न लहरों में न साहिल से लगाती हो !
घटाओं में सिमट कर चाँद जब नभ में घिरा होता
तुम्हारी जामुनी अलकें मुझे भी ढाँप लेती हैं,
धरा को देख मुड़-मुड़ कर ठहरता झुण्ड तारों का
तुम्हारी वापसी की याद मुझमें काँप लेती है।
बरसती है बहुत-सी चाँदनी बाहर पिघल कर जब
तुम्हारी ही विभा मुझमें चमक कर डबडबाती है,
डहक कर वन-कपोती व्योम में उड़ती अकेली यों
तुम्हारी साँवरी चितवन लजा कर फैल जाती है।

मुझी में घर घड़ी घुल कर न क्यों मुझमें समाती हो !

बड़ा निष्ठुर तुम्हारा खेल रंचक भी नहीं बदला
पराजित वंचना की काँपती लौ को बुझाना क्या !
तुम्हारे दीपते सौन्दर्य की गोरी शिखाओं से
मुझे अपनी अनामी प्यास का दामन बचाना क्या !
कभी पहना दिया मुझको झुकी तिरती निगाहों से
वही मंगल कवच अब मैं तुम्हें लौटा नहीं सकता।
अचीन्हे जन्म-जन्मों तक उसी की आँच में तप कर
तुम्हें पाऊँ न पाऊँ पर शरण से जा नहीं सकता।
अछूते स्नेह से अपने जलाकर फिर बुझाती हो !

अनिश्चित शून्य में डूबी यही मंजिल समर्पण की
यहाँ आकर कदम पहले पहल कुछ काँप जाता है।
हृदय सुकुमार पहले तो सहमता है, ठिठकता है
अटल विश्वास फिर गति में नया बल फूँक जाता है।
रही बाकी न मुझमें कल्पना तुमको सजाने की
हुई है बाँझ मेरी प्रीति केवल सूख जाने को।
न पिघलेगा न पिघलेगा कभी यह आस का पाहन
मुझे कह दो कि मेरी अर्चना है टूट जाने को
मुझ जब भूल जाती शांति—तुम भी भूल जाती हो !

फूल की वेदना

रोज तुम्हारे चरणों पर चढ़-चढ़ कर मैं गिर जाता हूँ,
ओ मेरे अधपुजे देवता ! फिर भी तुम्हें मनाता हूँ।
निष्ठुर देव-चरण जी भर कर मुझे नहीं झुकने देते,
अपने घिरे पुजापे में क्यों मुझे नहीं रुकने देते;
मैं डाली का टूटा सपना बिखर नहीं क्यों पाता हूँ,
रोज तुम्हारे ही चरणों पर चढ़-चढ़ कर गिर जाता हूँ।
तुम कैसे पूजा के पत्थर तुम कैसे देवत्व-शिखर,
बोलो ! किसने तुम्हें बनाया इतना ज्योतिमय सुन्दर;
अपनी साँस-साँस में मैं इस छवि का दिया जलाता हूँ,
पर अधजले पतिंगे जैसा तड़प-तड़प मँडराता हूँ।
आखिर इतनी रूप-शिखा कैसे तुमने मुझमें भर दी,
जी भर कर कुचले जाने की तृष्णा भी मुश्किल करदी;
रोज इसी तृष्णा के नाते पास तुम्हारे आता हूँ,
बिना उगे बिन कँपे तुम्हारे चरणों पर चू जाता हूँ।
सुख के भीग मंद स्वरों-सी इनकी श्यामल छाँह मुझे,
इनके सिज़दे में ही शायद छुए तुम्हारी बाँह मुझे;
कहाँ चुरा कर ले जाऊँ मैं इनके भीतर उमड़ा रस,
यह लाचारी-सी लाचारी, मैं क्या बेबस-सा बेबस !
मैं इनके मधुभरे कगारों से प्यासा फिर आता हूँ,
छूकर पद-नख-ज्योति तुम्हारी मैं नीचे गिर जाता हूँ।
इनकी मादक सुरभीली पावनता मेरी पहचानी,
बिना पिये भी मैंने इनकी शीतलता सब दिन जानी;

इनमें बाँध गईं रवि-किरणें अपनी स्वर्णिम अरुणाई
इनमें गूँथ गईं शशि-किरणें अपनी गोरी परछाईं;
मैं इनकी मासूम मृदुलता में भी शरण न पाता हूँ,
रोज निवेदित हो होकर भी चरणों से गिर जाता हूँ।
टेक नयी गढ़ता प्राणों में फिर भी रोज समर्पण की,
बीत बीत कर इन चरणों पर चढ़ने के अनुवर्तन की;
ओ अघद्रवे देवता! तुमको ज्यादा नहीं गलाऊँगा,
बुझी साँझ के रुँधे गीत से अधिक न तुमको गाऊँगा।
कल आऊँगा फिर लेकर बौराई बदराई आशा,
कल फिर अपने से टूटूंगा मैं अर्पण का चिर प्यासा;
पहले छूने से डरता था—अब कुछ तो पा जाता हूँ,
रोज तुम्हारे चरणों पर चढ़-चढ़ कर मैं गिर जाता हूँ।

दास बन कर रह गया

ढीठ मुझको इस क़दर तुमने शुरू से कर दिया,
है तुम्हारी याद ही मुझमें झलकती हर घड़ी,
देख पाती हैं न मेरी पुतलियाँ तुम से घिरी
एक युग से पाँव में जंजीर मेरे जो पड़ी !
भूल जाते हाथ तुम को पूजने में नित्य ही—
है उन्हें जकड़े विवशता की धड़कती हथकड़ी !

मुँह लगाया है तुम्हींने तो मुझे इतना अधिक—
छेड़ता रहता तुम्हारी भव्यता को मैं सदा,
जो न मिलने की मुझे कण भर कभी इस जन्म में,
चाहता पाऊँ तुम्हारे रूप की सब संपदा !
चाहता हूँ जी उठे मेरा मरा संगीत फिर,
जी उठे हर साज़ सब दिन को हुआ जो बेसदा !

है तुम्हीं ने तो मुझे चरणों चढ़ाया इस तरह—
मैं तुम्हारी दिव्यता का दास बनकर रह गया !
टूटती रातें मुझे मेरी लिये जाती कहाँ,
मैं तुम्हारे स्वप्न की ही साँस बन कर रह गया !
जोर इस मन पर रहा बाकी तनिक मेरा नहीं,
मैं तुम्हारे दर्शनों की प्यास बन कर रह गया !

है तुम्हीं ने तो मुझे इतना अचेतन कर दिया—
मैं तुम्हारे दर्प की सीमा समझना चाहता,

एक अंजलि भी विनय की मैं न जी भर दे सका,
पर तुम्हारे मान की हर शक्ति सहना चाहता,

मैं तुम्हारे तेज की मीठी लिपटती आँच के—
अधजले उन्माद में रह-रह तरसना चाहता !

मुग्ध चातक-सा मुझे तुमने शुरू से कर दिया,
है रमी प्रति रोम में मेरे तुम्हारी घन घटा,

दूर से ही नित उमड़ कर जो न बरसी बूँद भर—
जलभरी वह शस्य-श्यामल पुन्य स्वाती की छटा,

था मुझे विश्वास जलती मृगशिरा में भी अटल—
आसरा मेरा तपन में भी न कणभर को कटा !

इस तरह अपनी बहारों में बसाया है मुझे,
मैं गमकती मंजरी की कामना करने लगा,

पी सकूँ सारी सुरभि प्रति क्षण तुम्हारी साँस की—
मैं लुटा-हारा तुम्हारा सामना करने लगा !

भूल कर अपने पुजापे की सिसकती दीनता,
ढीठ साधक देव-प्रतिमा की विभा हरने लगा !

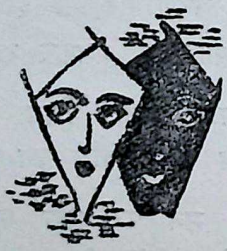

उलहना

तुम्हीं से फिर तुम्हारे दर्प का देता उलहना मैं !

तुम्हारी मुग्ध घुँघराली हँसी के बीच शिकनों में–
उचटती भावना का मैं निठुर उपहास पाता हूँ,
नये सपनों-उमंगों के नशीले मान में डूबे—
तुम्हारे रूप का दर्पण तुम्हें फिर से दिखाता हूँ !

अबोली बेरुखी का भी परायापन नहीं छिपता–
बरसती पौ सरीखी गुनगुनाती सर्द नजरों में,
अछूते गर्व का मादक महकता मन नहीं छिपता–
सजग हो कर सिमटती फैलती बेदर्द नजरों में !

उमस कर चाहता फिर भी तुम्हारे पास रहना मैं !

तुम्हें अभिमान अपनी देवदुर्लभ पावनी छवि का,
मुझे घेरे विगत की शून्यता की ऊबती छाँहें,
तुम्हारे सामने खुलता नया उन्माद यौवन का—
सदा को बन्द मेरी कामना की डूबती राहें।

तुम्हें वरदान नूतन कल्पना के रास रचने का,
मुझे अभिशाप अपनी वंचनाओं में सुलगने का,
तुम्हें है टेक अपनी मदभरी उठती वहारों की,
सदा को सो गया मधुमास मेरा अब न जगने का !

तुम्हीं से चाहता फिर-फिर तुम्हारी जीत कहना मैं !

कुहासी भावना में बन्द डरती धड़कनों का तो–
तुम्हारी ऊब से पहले सदा को टूटना अच्छा,

भले तुम को पुकारूँ मैं जनमभर अधमरे स्वर से–
तुम्हारी याद का दिल से सहारा छूटना अच्छा !

अभी मैं जानता भी ठीक से तुम को नहीं शायद,
तुम्हारे रूप का विस्तार पूरा कब समझ पाया,
यही लगता सुनहले जगमगाते एक पत्थर में–
सदा को कैद हूँ मैं बन्द जकड़ा और तरसाया ।
तुम्हीं से माँगता इस बेबसी का स्वाद सहना मैं !

अहं की किन अबूझी घाटियों से गूँजती आई––
अचंचल आप अपने से तुम्हारी साँवली पूनम,
मुझे लगता अथाही मन तुम्हारा उड़ गया ऊपर,
जिसे बिलमा रहा जैसे कहीं कोई धड़कता भ्रम !

कहीं खोई दुपहरी के खिंचे जलस्रोत-सी बह कर–
तुम्हारी धूप मुझ को छाँह तक आने नहीं देती,
भले जीवित न अपने प्यार में मानो मुझे ओ तुम !
तुम्हारी मानिनी मुझ को कहीं जाने नहीं देती !
तुम्हीं स फिर तुम्हारे दर्प का देता उलहना मैं !

घर की सफाई के बाद

बिखरे-बिखरे बाल तुम्हारे ज्यों नागिन लहरा जाये
मस्त हवा भी जिनको छूकर सहमे, काँपे, सकुचाये।
उड़ते मधुपों की टोली को मधु का पीना आ जाये
सावन की सुन्दरी घटा को सर्द पसीना आ जाये।
बिखरे-बिखरे बाल तुम्हारे कोयल के दल घिर आये
इनके साथ सिहरते फिरते मेरी रातों के साये।
सूखे-सूखे होंठ तुम्हारे रुँधे भोर के दो तारे
बेहद मीठा गीत पड़ा हो पंख समेटे मन मारे।
जैसे छाँह शरद की अपनी धूप न फिर से ले पाये
उमसे दिन के बाद कुंवारी संध्या जैसे पथराये।
सूखे-सूखे होंठ तुम्हारे रूठे फूलों की शाखें
ज्यों घनीतिमा में बैठे दो पंछी बन्द किये पाँखें।
थके-थके दो चरण तुम्हारे अपने में ही मुँद जाते
जल में डूबे कमल सरीखे ऊपर झलक नहीं पाते।
ये भीतर-भीतर घुल-घुल कर अपना सारा रस पीते
मोती-लड़ी कुमुदिनी दो झुक जातीं ज्यों रजनी बीते।
थके-थके ये चरण तुम्हारे दोनों रह रह अँगराते
ज्यों दो हंस नदी के तट पर ठिठके-ठिठके रह जाते।

डा. दिल्ली रमण देवी
कल्याणी महाविद्यालय
पुस्तकालय
8282

हुआ चंपई रंग तुम्हारा श्रम से कुम्हला कर श्यामल
हँसी तुम्हारी ज़र्द–बहारों से बिछुड़ी मंजरी नवल।
पड़ती जाती है गालों पर लंबी पलकों की छाया
रात गये दिन समझ चाँदनी को पंछी हो भरमाया।
पड़ा कपूरी रंग तुम्हारा हल्दी-सा पीला-पीला
श्रम से हुआ केतकी जैसा सुमुखि ! तुम्हारा मुख गीला।
उचटा-उचटा रूप तुम्हारा बिना सँवारा अनखाता
इतनी बार बुलाने पर भी चुप-चुप दूर रहा आता।
जैसे उचड़ी नींद किसी ठंडे सपने से कतराये
कटे खेत में उतर अनमनी पूनम जैसे सकुचाये।
फीका-फीका रूप उदासी भरी नीम-सा गहराता
थका-थका सौन्दर्य तुम्हारा बिना छुए बिखरा जाता।

किस तरह...

किस तरह बदला हवा का रुख अँधेरी रात में
बुझ गया जब चाँद–मर्मर-सी जुन्हाई झर गयी,
किस तरह हर साँस पथराने लगी सैलाब से
किस तरह हर भाव की अभिव्यक्ति जलकर मर गयी।
अर्थ आँखें खोलने के पूर्व कैसे चल बसा
शून्यता की गूँज तक बाकी न शब्दों में बची,
रह गयी अन्विति अजन्मी ही अबूझी अनसुनी
रह गयी जैसे अनागत की अपेक्षा अनरची।
किस तरह विश्वास का हर बिम्ब संशय में सिमट
कम्प के हर मोड़ से होकर गुजरना चाहता,
किस तरह बस एक ही उत्तर सिमट कर वेग से
प्रश्न-से फैले निपट निस्सार मन को दाहता।
किस तरह चुभती रही जख्मी सितारों की चमक
पंख जिनके सरकटी परछाइयों में खो गये,
छटपटाती रह गयी घुट कर कुहासे में किरण
अजनबी बन कर अनामी स्वर सदा को सो गये।
किस तरह मुर्दा प्रतीकों में जकड़ कर रह गया
एक सपना नींद की हर बात में टूटा हुआ,
सह न पाया देर तक सिहरन भरे जल की छलक
वंचनाओं से डसी सुधि का कलश फूटा हुआ।
किस तरह फैली विकृति के गर्त में धँस कर कहीं
सृजन के पहले सहमती चेतना का दम घुटा,
शिल्प में ढलने, सँवरने, रूप बनने के प्रथम
प्रेरणा का शव समय के क्रूर हाथों पर छुटा!

कहीं ऐसा न हो...

कहीं ऐसा न हो इस मौसमी मुसकान के नीचे,
छिपा हो मौत का पैग़ाम कवि की प्रेरणाओं को !
कहीं ऐसा न हो सूखी सहमती सर्द साँसों में,
कुचलने का भरा हो भाव अर्पित अर्चनाओं को !
कहीं ऐसा न हो रीती, उचटती, सिक्त चितवन में,
भरी शरमिंदगी हो दूसरे के पास आने की !
हमेशा रोकती हो शील की उलझन उभरने से,
विरति हो प्रेम के ये गीत सुनने की सुनाने की ।
कभी मन का न कोई भेद भूले से प्रकट हो ले,
इसी से हैं नपी तौली चतुरता से भरी बातें !
न धड़के लड़खड़ाए एक भी संकेत भीतर का,
सँभल कर बैठने की, बोलने की सब कुशल घातें !
कहीं ऐसा न हो हर याद जीवित कैद बन जाए,
भटक कर भी न पहुँचे पास कोई स्नेह का साया !
चुकाना पड़ न जाए मूल्य कल्पित प्यार के सुख का,
जिसे तन की रुंधी मधुगंध ने हर बार तरसाया !
कहीं ऐसा न हो दिल से लिपटने को उठी नजरें,
बहुत पहले पराई हो चुकी हों, दूर जानी हों !
सुलग कर, जाग कर हर स्वप्न जो सौगंध लेता है,
वही इस प्यार के उपहास की जलती निशानी हो !
कहीं ऐसा न हो रह जाँय प्यासे शब्द ज्यों के त्यों,
जनम भर रूप की सूनी सलोनी सरहदें छू कर !
कहीं ऐसा न हो बीती-अबीती वंचनाओं को,
दिलासे के मधुर विश्वास की हो छाँह भी दूभर !

मैं तेरा कवि !

मैं तेरा कवि, ओ कच्चे पारे-से बिखरे मन वाली !
अपनी ही सुषमा में सिमटे रस-गर्वीले तन वाली ।
मैं तेरा कवि, ओ संघर्षों की सौंदर्य-शिखा अविचल !
ऊँची उतराती चितवन में भरे रूप का गंगाजल !
मैं तेरा कवि, ओ अभाव में तेज दहन करने वाली !
अपनी तिमिर-जयी आभा में ऊपर उड़ती मतवाली!
मैं तेरा कवि, ओ फूलों की गंध-वसी गैरिक-वसना,
मैं तेरा कवि, ओ तप की लावण्य-शिखा, आलोकघना !
मैं तेरा कवि, ज्योति-घरोहर ओ मेरे सूनेपन की,
फिर से भर दी माँग किसी ने पथराए नीलेपन की ।
मैं तेरा कवि, तू मेरे हर नए गीत की पटरानी,
ओ वीरान पुकारों की प्रतिध्वनि, ओ आधी पहचानी !
मैं तेरा कवि, ओ अनजन्मे निर्झर की अभिसारवती
मैं तेरा कवि, ओ जल-शिखरों से अनजान नई परती !
मैं तेरा कवि, तेरे बिन-देखे भूले सपने गाता,
तेरी मुँहफट मादकता का मुझ पर रोज नशा छाता !
मुँद-मुँद जाता है तेरा मन बिना सुरभि के दल खोले,
फिर भी मेरा हर टूटा स्वर हर दम तेरी जय बोले !

विस्मय

तेरी मुस्कानों में क्या मद है जो पी पी जाता हूँ ?
क्यों मैं तन्मयता में प्रतिक्षण डूब-डूब उतराता हूँ ?
तेरी आँखों में असंख्य नक्षत्रों का सौन्दर्य भरा,
मेरी पथराई आँखों में जिनका कम्प बड़ा गहरा।
तेरे रंजित कानों में क्या है जो इतना गाता हूँ ?
जहाँ स्रवन्ती के स्वर-सा बहता बहता थम जाता हूँ
भरे बादलों-सी तेरी भौंहों में किस सुख की सिहरन
जिसे झाँकती है नीचे से मेरी हारी-थकी तपन ?
तेरे दो होठों की दिव्य प्रभा में क्या पा जाता हूँ ?
क्यों तेरी बोली वनने को तरस-तरस रह जाता हूँ ?
तेरे चरणों में क्या है जो देख-देख ललचाता हूँ ?
सकुचाये हाथों का कंपित अर्घ्य नहीं दे पाता हूँ।
तेरे मन की घनी नीलिका में जाने क्या पाता हूँ ?
क्यों उसकी आकाशी पावनता में रोज नहाता हूँ ?

प्रियतम लौट गए

लगी रह गई मैं सिंगार में साजन लौट गए,
रूप-प्रसाधन में बेसुध थी, प्रियतम लौट गए।

[क]

बड़ी अभागिन मैं—कब प्रिय का आना जान सकी,
कब उनकी रस बरसाती पग-ध्वनि पहचान सकी।
मैं सौंदर्य-गर्विता दर्पण में थी मतवाली,
मैं रचती रह गई नखों की, अधरों की लाली।
गूँथ रही थी वेणी मैं नवऋतु के फूलों से,
रही सजाती अंगों को नित नए दुकूलों से।
मुझको सजते देख द्वार से साजन लौट गए।

[ख]

बीती सुख की घड़ी पिया के आने के पहले,
नहीं देख तक सकी उन्हें मैं जाने के पहले।
बिखरी कलियाँ, सूख गए सब फूल पिपासा के,
जलने के पहले ही टूटे तारे आशा के।
ज्यों-की-त्यों रह गई उमंगों की थाली भरकर,
दूर नहीं थी साँझ, घिर रहे थे सपने नभ पर
मेरा सब श्रंगार उन्हीं का था, जो लौट गए।

[ग]

बैरिन बनी निमिष में यौवन की तृष्णा मेरी,
मिलनवती को सजने में लगती ही है देरी।

कौन पिरोता नहीं कुंआरी साधों की माला ?
सदा रिझाती और मोहती प्रिय को नवबाला ।
की मैंने क्या बात अनोखी और नई आखिर !
सोच रही हूँ यही विरह की मारी मैं फिर-फिर ।
कैसे मुझसे रूठे इतने, कैसे लौट गए ।
क्यों बिन बोले, बिना बुलाए, प्रियतम लौट गए !

पुकार

सींचते रहना प्रणय की प्यास मुरझाने न पाये ।

[क]

मुग्ध मन में प्यार का तुमने नया पौधा लगाया,
यह बिका जीवन मुझे अब तो नहीं लगता पराया ।
चुक गई थी मैं, भरा तुमने बहुत-सा रूप लाकर,
बन गई फिर से कुमारी मैं तुम्हारी बाँह पाकर ।
जान पाती हूँ उसी क्षण आस का, विश्वास का सुख,
जब तुम्हारी गोद में गिरता शिथिल मेरा तृषित मुख ।
छूट जाये साथ, सपने की जलन जाने न पाये,
सींचते रहना प्रणय की प्यास मुरझाने न पाये ।

[ख]

जान पाई मैं तुम्हीं से याद कितनी है नशीली
है तुम्हारे स्नेह से मेरी बनी हर साँस गीली ।
हर धड़क दिल की बनी पहचान होठों की तुम्हारे,
नित घुली जाती तुम्हीं में मैं बिना तुमको पुकारे ।
सत्य नारी-जन्म का जाना तुम्हीं में गुँथ उमड़ कर,
मैं तुम्हारी छाँह से लिपटी रहा करती निरन्तर ।
इस समर्पण के पुलक पर आँच तक आने न पाये,
सींचते रहना प्रणय की प्यास मुरझाने न पाये ।

मैं चली आ ही रही थी क्यों मुझे तुमने बुलाया,
मुझ कुहासों से भरी को क्यों दिवा-सपना दिखाया !

कह दिया तुमने मुझी से मुझ अबोली अनकही को,
क्यों दिया शृङ्गार इतना मुझ अधूरी अनचही को ।

हो गई जूठी विधाता की किसी अनजानता से,
सट गई अब तो सदा को मैं तुम्हारी मानता से ।

अब मुझे कोई कभी जलधार तरसाने न पाये,
सींचते रहना प्रणय की प्यास मुरझाने न पाये ।

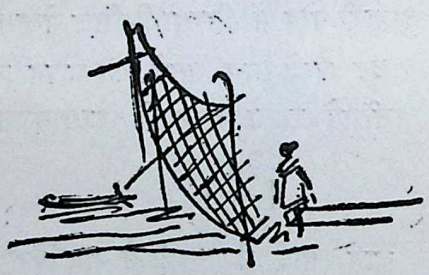

बचा क्या है ?

मेरे पास सिवा सूनी साँसों के और वचा क्या है ?
सिर्फ तुम्हारे निर्मम उपहासों के और वचा क्या है ?
दिन-दिन भर पोंछा है मैंने अपना ही क्षत-विक्षत मन
रोज छिपाया है मैंने तुमसे सब अपना घायलपन।
रोज रक्त-रंजित हो-होकर मेरा यह विश्वास जिया,
रोज हृदय ने सिसकी भर-भर कर घावों का दर्द पिया।
सिर्फ तुम्हारे खूनी आघातों के और वचा क्या है ?
मेरे पास सिवा जलती वातों के और वचा क्या है ?

:०:

रोज तुम्हारी बदली नजरों ने जी भर कर ठुकराया,
अपनी जूठी एक घूँट के लिए हमेशा तरसाया,
मुझ को सहने की सीमा पर लाकर इतना ललचाया
सपने में उड़ते बादल के पीछे पीछे भटकाया।
आखिर विधना ने मुझको देने को और रचा क्या है ?
मेरी जगती रातों में सोने को और बचा क्या है ?

:०:

तुमने अपनी धधकाती किरणों से क्यों मुझको सींचा
कभी न क्यों गोदी में मेरा अश्रुभरा मस्तक खींचा।
छोड़ो मेरे खँडहर जैसे टूट रहे आहत तन को
सब दिन को छोड़ो मुझ वंचित चिर अवहेलित उन्मन को।
जो न दिखा सकता उसके प्राणों में आज मचा क्या है ?
सिर्फ तुम्हारे निष्ठुर संलापों के और वचा क्या है ?

पुनर्मिलन

किसी चकोरी की अंधी आँखों में फिर छा गया उजाला
आज बुन रहीं जिनमें शशि-किरणें मादक सपनों का जाला।
फिर व्याकुल हो उठा तृषातुर किसी चातकी का तन प्यासा
जाग उठी जिसके सूखे शंकित मन में वर्षा की आशा।
आज पिकी के शिशिर-सुप्त प्राणों में फिर नूतन स्वर फूटे
आज आगये फिर जिसके बिछुड़े मधु के दिन कब के छूटे।
सोच रही मैं आज हँसूँ कितना—गाऊँ कितना शरमाऊँ
जी करता है इन्हीं समर्पण की लहरों में बह-बह जाऊँ।
दूर खंजरीटों के वन में शरद-प्रभाती बन कर छाऊँ
किंशुक के, करील के कुंजों में सुगन्ध बन कर लहराऊँ।
कभी सोचती झूम झमकती मैं सोलह सिंगार सजाऊँ
किन्तु सदा को छूटी साथिन मैं न तनिक सुख पर इतराऊँ।
पुनर्मिलन की इस बेला में क्या-क्या सोच रही हूँ चंचल
रही अंकपित दृढ़ वियोग में, सुख में आज बनूँगी पागल।
मेरे टूटे सपनों के सहचर, कुचले यौवन के संबल।
ओ मेरी खंडिता साधना के असह्य दाहक छाया-छल!
आज तुम्हें पाकर जीवन बन गया नयी छलना का डेरा
मैं फिर से बन गयी किशोरी—जाग उठा बालापन मेरा!

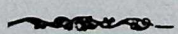

इतना सहने पर भी...

चुका तुम्हारा दर्द न अब तक इतना सहने पर भी !
घायल पड़ी प्रतीक्षा मेरी, मरी पड़ी अभिलाषा
पागल था प्रतिक्षण, अपने से ही डरती थी आशा।
जागीं जो धड़कनें मिलन में कभी न सोईं पल भर
रोज यही लगता था फिर बसने को सपनों का घर।
बीते की दुखती रीती चाहें सिसकी भरती थीं
मन की सारी कच्ची साधें जल-जलकर मरती थीं।
बुझी नहीं क्यों आग चिता की इतना दहने पर भी !
कैसा दर्द दे दिया तुमने जो न बीतने आता
मैं अनचाहा तुम्हें कल्पना में भी बुला न पाता।
मेरी कोई गूँज कहो कब तुमको पड़ी सुनाई
कब-कब मेरी साँस तुम्हारे चरणों पर चढ़ पाई।
क्यों फैली लहराती उड़ती हवा मुझे तरसाती
क्यों मेरी डूबी आवाजें तुमसे सदा चुराती ?
लगा न तुमको तनिक तुम्हीं में इतना रहने पर भी !
गीत-विनिर्मित हृदय तुम्हारा रस का रास रचाये
रूप तुम्हारा—जैसे पर्वत पर ऊषा, थम जाये।
चंदा की छाहों में बहती मुग्ध स्रवन्ती का स्वर
फूट रहा अनचूमे होठों से अनसुना निरन्तर।

सुर्मीली चितवन में सहमा-सहमा कंप प्रणय का
रूप तुम्हारा जैसे पहला पहला बौर मलय का।
चुका न मधु का स्रोत तुम्हारा इतना बहने पर भी !
मेरा मिटा-मिटा-सा यह मन क्या न कभी बाँचोगे
अभी समर्पण में तुम कितना और मुझे जाँचोगे ?
थक-थक मेरे प्राण वेदनाओं में भटका करते
जीवन के संगी-साथी विश्वास न आज ठहरते।
क्यों मुझसे अपनी पीड़ा का भेद न जाना जाता
तुमसे बढ़कर अब तो कोई और न माना जाता।
गला तुम्हारा दर्प न मेरे इतना ढहने पर भी !

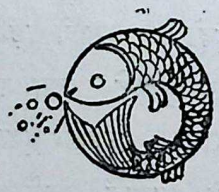

तुम्हारी याद

तुम्हारी याद फिर भी संकटों में शक्ति देती है।
भले ही तुम समझ लो मैं हुआ निष्प्राण सब दिन को
दुखों की मरु-शिलाओं में घुटा पाषाण सब दिन को,
अँधेरी खोह में जीवित गड़ा शव आप अपना ही
मरा जो पूर्व दिखने के वही बदनाम सपना ही,
भले ही तुम अलग कर दो चरण की छाँह से अपने
मुझे बाहर हटा दो तुम शरण की बाँह से अपने;
तुम्हारी याद फिर भी संकटों में शक्ति देती है।
उपासक की उमड़ती वंदना, पर स्वर नहीं हो तुम
पुकारों से भरी चिर शून्यता, उत्तर नहीं हो तुम,
टपकते खून जैसी आस्था हो, तुम नहीं बिछुड़न
तसल्ली दूर रहकर भी मुझे देता तुम्हारा मन,
तुम्हारी मौन करुणा को सतत पहचानता हूँ मैं
तुम्हारा हर इशारा जानता जो, मैं—वही हूँ मैं।
तुम्हारी याद मेरी हर विकलता छीन लेती है।
नया संकल्प सहने का, नया उल्लास कहने का,
निरन्तर आपदाओं में नया आवेग बहने का,
नया विश्वास जलने का विरोधों के प्रभंजन में
तुम्हीं को पूजने का नित नया उन्माद तन-मन में;
मुझे लगता तुम्हारी प्रेरणा मुझ को जिलाये है
तुम्हारे प्यार की लौ बीच छाती में छिपाये है;

तुम्हारे स्नेह की उठती किरण तम चीर देती है।
वही हूँ गीत मैं जो खत्म हो होकर शुरू होता
वही अभिशाप हूँ जो हर घड़ी लगता, नया होता।
भले ही तुम समझ लो प्राण मेरे रुक गये थक कर
सभी टूटे पड़े हैं आज पूजा-भाव धरती पर,
भले सब मिन्नतें मेरी नहीं तुम तक पहुँच सकतीं
भले मेरी तृषित आँखें तुम्हें जी भर नहीं तकतीं
तुम्हारी याद फिर भी संकटों में शक्ति देती है।

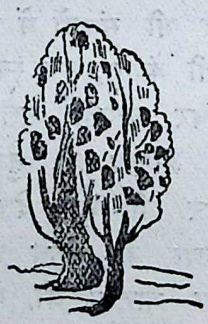

मृग-तृष्णा

देखो, मेरे दिल ने अब तक कितना-कितना धोखा खाया।
किन मृग-तृष्णाओं ने मुझको डसा और सब दिन तरसाया।
देखो, कितनी बार रूप के सपने ने मुझको डहकाया,
जीवन का कोई भी तो विश्वास समय पर काम न आया।
सुधियों के संचित संयम की शक्ति मुझे क्यों बचा न पाती,
जब कोई साकार वंचना छलना जीवन में आ जाती,
देखो, मेरे प्राण छले जा-जा कर हरदम राह बदलते,
बीत रही जीवन की पूरी राह भ्रमों में चलते चलते।
ओ आशा की नयी किरण! तुम भी कुछ दिन आलोक जगाओ,
मन में अपनी ज्योति बसा कर तुम भी घुट-घुट कर मर जाओ।
मेरे जलन भरे जीवन में कुछ दिन रचो ओस की माया,
मेरे तृषादग्ध अन्तर को पहना दो बादल की छाया।
मुझे चैन से कभी न सोने दें जीवन में साथ तुम्हारा,
मुझे तुम्हारी बाहों का मिल सके न शायद कभी सहारा।
छू न सकेंगे ये मेरे दो हाथ तुम्हारी आँखें गीली
भरी रहेगी मेरे मन में सिर्फ तुम्हारी सुधि रेतीली।
घायल रही प्रेरणा मेरी सदा कल्पनाओं की मारी,
देखो, मेरा दिल करता है कुचले जाने की तैयारी।

मोड़ हैं अनजान...

मोड़ हैं अनजान कितने पन्थ में मेरे !
हो गयी जैसे मिलन की बाँसुरी खाली,
अब न मिलती है स्वरों को छाँह रसवाली ।
छोड़कर मुझको गया है गीत बनजारा,
प्राण रोते पर न बहती अश्रु की धारा ।
गोद सूनी है गगन की—मर गये बादल,
एक दो क्षण झूलते बस पान्थ पंछी-दल ।
कामना की ओ प्रतिध्वनि ! क्यों मुझे घेरे
मोड़ हैं अनजान कितने पन्थ में मेरे ।

:o: :o: :o:

जागती है रात मेरी—सो गया सपना,
तोड़ ली किरणें किसी ने, चन्द्रमा अनमना ।
याद किसकी है चली आती दुराशा-सी,
काँप उठती है हवा अभिसार की प्यासी ।
काँपते हैं पेड़ जो उनको सिहरने दो,
बन्द कर लो आस मन की, प्यास भरने दो ।
सुन न पाऊँ सनसनी मैं श्वास की तेरे,
मोड़ हैं अनजान कितने पंथ में मेरे ।

आना-जाना जरूर पंथी साँवरिया !

[लोक-धुन पर आधारित]

बौरी अँबवा की डार पंथी साँवरिया ।
फूले घने कचनार बेदरदी छलिया !
सीरी सटी बयार, कुसुम-रँग-रँन-रँगी
गोरी गोरी गंध कनेरों बीच जगी
गदरी कलगियों पार पुकारे कोयलिया
आना आना जरूर पंथी साँवरिया !
बीनो नीम के फूल बसंती बनजारिन !
कजरी ललौहीं साँझ, चलो घर पनिहारिन
फूले सारी रात पिया की फुलवारी
बन्द चंदन केंवार, न आए बनवारी
मुंदें खुलें मँडराय पलकन पावरियाँ
आना आना जरूर पंथी साँवरिया !
मोतिन महुआ डार पखेरू नीड़ बसे
पियरे तीसी के पात सरसों रंग-रसे
भीजे फसल लहराय, ऐपन नीर ढरे
हल्दी चढ़ी वनपाँत, टेसू सेन्दुर-भरे
मन में अँटें न समायँ भौंरी गावरियाँ
आना आना जरूर पंथी साँवरिया !

रस के बूँदा परैं

[लोक-धुन पर आधारित]

खोलो, केवरिया खोलो रस के बूँदा परैं !
सहसा इकहरी घटा गहराई
आ ही रही थी, न मैं बिलमाई
खोलो, केंवरिया खोलो रस के बूँदा परैं !
क़जराये घन घेरे घहरिया
पुरवा में तन-मन काँपे थहरिया
खोलो, केंवरिया खोलो रस के बूँदा परैं !
बिजली चमके—नागिन लजाये
चौंमुख मेरी लट लहराये
खोलो, केंवरिया खोलो रस के बूँदा परैं !
भीजे चोली, भीजे फरिया
भीजे सारी की सारी लहरिया
खोलो, केंवरिया खोलो रस के बूँदा परैं !

पुकार

तुमने लूटा मुझे, तुम्हारी दुनिया ने भी मुझे रुलाया,
नहीं सहारा दिया गगन ने, नहीं धरा ने धीर बँधाया,
डसा उसी ने जिसको मैंने सदा प्यार से गले लगाया,
कैसा यह संसार तुम्हारा, कैसी भीषण है यह माया !
फूल समझकर जिसे चूमता वही मुझे काँटा बन जाता,
सहता रहता जिसे स्नेह से वही ज़हर की आग लगाता,
चलती रहती है सब दिन यह दंशन-भरी तुम्हारी लीला,
सब मीठी बातें करते हैं—कितना सब का गला सुरीला ।
डंक मारते रहते मुझको यही प्रीति के गीत रसीले,
इनके मन छल से काले हैं, मुख हैं बने कपट से पीले,
क्यों ऐसा मन मुझे दे दिया है तुमने ओ मेरे दाता !
मुझसे इन कृतघ्न जीवों को प्यार किये बिन रहा न जाता ।
जान-बूझ कर भी तुमने क्यों ऐसा मेरा हृदय बनाया,
जो निस्संग द्वीप-सा निर्जन होकर भी है सदा पराया,
क्या प्रकाश की बात, कभी जब अंधकार भी हुआ न मेरा,
कैसी निर्मम देन तुम्हारी केवल अपवादों ने घेरा ।
इतना सहकर भी मैंने निष्ठुर छलना का अंत न पाया,
तुमने लूटा मुझे, तुम्हारी निष्ठुरता ने मुझे सताया ।

मैं हूँ केवल याद तुम्हारी

मैं हूँ केवल याद तुम्हारी !

बुझे दीप के धुएँ सरीखी ऊपर उठती याद तुम्हारी ।
मिले न ऐसी मौत किसी को, कहीं न छाये ऐसा ग़म
बूँद-बूँद मर गयी स्नेह की, टूटा किरण-किरण का दम ।
बची धुँएली ऐंठन तम की, राख मिलन की है केवल
डूब गये सब मन के जुगनू, हैं जीवन-व्यापी काजल ।
बीच नदी में समा गयी सुख की डोली दुर्दिन की मारी !

मैं हूँ केवल याद तुम्हारी ।

बीत रही है जीवन रजनी, खड़ा मरण-सूरज सिरहाने
एक एक करके सब मेरे सपने भी हो गये बिराने ।
यह भी मुमकिन है मिट जाय तुम्हारी याद, न मैं मिट पाऊँ
दिन के यायावर आगे बढ़ जायँ—पिछड़ कर मैं रह जाऊँ ।
प्रतिपल क्षीण हो रहीं बीते दिवसों की रेखाएँ सारी !

मैं हूँ केवल याद तुम्हारी ।

बड़ी विषैली प्यास मुझे है, लगता तुमको कभी न ध्याऊँ,
सुधि के कोहरे की फैली इन सब चट्टानों को पी जाऊँ !
घन-व्यापी, सागर-गर्जित जीवन का सूनापन पी डालूँ,
पिऊँ सृष्टि के सभी स्वरों को, सारा शुष्क पवन पी डालूँ,
अन्तर के नैकट्य देवता ! मैं हूँ अपनी ही लाचारी ।

मैं हूँ केवल याद तुम्हारी !

तुमने धरती को पावस के अगणित पंख दिये !

डूबी परवत में हरियाली, वन सूखे अकुलाये
देख रह थे खेत–गगन में अब तक मेघ न आये।
ताल-तलैया घटे दहक कर, तपन लगी शिखरों तक
बही लुआरें ऐसी–सारी सृष्टि अधजली अपलक
तुमने पंखहीन धरती को नूतन पंख दिये !

वज्र अग्नि यह जिसे न रवि-शशि-सागर तक सह पाये,
लंका-दहन मच गया–ऐसे उबले अंधड़ आये।
लगता था इन अंगारों की कोई थाह नहीं है,
बिना तुम्हारी छाँह कहीं, ठंडक की राह नहीं है।
तुमने धरती को मेघों के अगणित पंख दिये !

उड़ो उड़ो अभिशप्त धरित्री ! जलधारों में धँसकर
इतने ऊँचे उड़ो कि पीछे छूटें सपनों के घर।
झुकी घटा में घिरो, गगन की चोटी पर चढ़ जाओ
शीतल पवन-झकोरों में आर्द्रा-सी घुलती जाओ।
तुमने धरती को मेघों के उड़ते पंख दिये।

प्रतीक्षा

कितनी दूर सबेरा मेरा है जो रात कटे।
साथ छोड़ जा छिपा तिमिर में मेरा स्वप्न छली
बुझी जा रही जैसे मेरे मन की शिखा जली।
भूल गया जीवन अपने को लेकिन तुम्हें नहीं
तुम न सुनो मेरी पुकार ऐसा भी हुआ कहीं!
कितनी और प्रतीक्षा बाकी है जो रात कटे।

:o: :o: :o:

ओ अधपुजे देवता! तुमने क्या क्या नहीं दिया
पत्थर हो कर भी तुमने जल का विस्तार किया!
दे सन्धान रूप का, संकल्पों को दी आशा,
अब तक पूरी नहीं सत्य के सुख की अभिलाषा।
कितना अर्पण शेष अभी—मन कितना तुम्हें रटे।

:o: :o: :o:

मेरे सब दुख मोती कर दो ओ मेरे स्वाती!
एक बूँद में संचित हो सब तृष्णा बरसाती।
हो सूना आकाश भले—तुम सम्पुट मत ढकना
रस आयेगा द्वार तुम्हारे—तुम केवल पकना।
जब कस्तूरी मिले तभी गन्धों की प्यास घटे।

:o: :o: :o:

दे दो मुझको ध्यान, हरो ये स्वर मेरे सारे
सब व्याकुल आह्वान मुझी में घुटते मन मारे।
टुकड़े-टुकड़े कर मुझको ये काट रहे कामी
कर दो मुझको रिक्त वंचनाओं के ओ स्वामी!
कलप रही हैं किरणें मेरी कब यह तिमिर छटे,
कितनी दूर सबेरा मेरा है जो रात कटे।

तुमसे न कहें तो किससे कहें !

इस उजड़े मन की वीरानी तुमसे न कहें तो किससे कहें,
जलते जीवन की बेचैनी बोलो तो कब तक कैसे सहें !
कब तक उधार के पंख कल्पना के मन को बहला सकते
ये पवन-झकोरे दुर्दिन के कब तक गति को सहला सकते ।
लगता है जैसे अब मेरे सपनों में भी कुछ नहीं रहा,
कहने से अच्छा था मैंने गीतों में जो कुछ नहीं कहा ।

अवरुद्ध साँस की दिशा-दिशा यह घुटती जकड़न किससे कहें,
बोलो ओ सुधि के सौदागर ! दुखभरी जलन यह किससे कहें !

नदियों से कोहरा उठ-उठ कर नभ तक पर्वत को ढँक लेता
उजियाला जल में धँस जाता, निस्तब्ध पवन झपकी लेता ।
वैसा ही सूना धुंध पहाड़ी प्राणों पर छाया रहता,
मैं सोच रहा कैसे मैं एकाकी इतना सब कुछ सहता ।

खोये मन की मिटती सन-सन तुमसे न कहें तो किससे कहें,
ओ दिल की धड़कन के दाता ! तुमसे न कहें तो किससे कहें ।

क्या हुआ !

क्या हुआ ! तुमने अगर फिर साथ मेरे बाँध दी
वापसी की राह में अपनी समूची नाखुशी ।
क्या हुआ ! दिन भर तपाती ही रही जो लौ-भरी
फिर मुझे रह-रह तुम्हारे दर्प की खारी हँसी ।
क्या हुआ ! तुमने मुझे कटु सत्य से यदि छू दिया
देख ली मैंने नज़र भर कर पुरानी बेवसी ।

क्या हुआ ! मुझको हमेशा का पराया जान कर
ली छिपा तुमने झुका कर आँख आँसू से भरी ।
क्या हुआ ! तुमने न कोई भेद जो मन का दिया
पड़ गयी कैसे तुम्हारी आँख में फिर कंकरी ।
एक गीले मोड़ पर आ कर कहानी रुक गयी
रह गयी पीछे अधूरी बात मेरी अधमरी

क्या हुआ ! तुमने न अब तक माफ जो मुझको किया
बिन हुआ अपराध मेरा भूलता तुमको नहीं ।
क्या हुआ ! कटने नहीं आती अगर उसकी सज़ा
मैं शपथ पाषाण के दिल की लिये बैठा यहीं ।
फिर कभी शायद किसी दिन अनझपी सुधि में सिहर
बात केवल एक अगणित अर्थ ले बैठे कहीं ।

क्या हुआ ! अब तक तुम्हारी छाँह ने भी भूल कर
की न मेरे साथ कोई स्वप्न की सौदागरी।
क्या हुआ जो एक क्षण को भी तुम्हारी बाँह ने
की न मुझ पर बौरते मधुमास की जादूगरी।
एक क्षण को भी तुम्हारी मानिनी पहचान ने
होंठ से मेरे न लगने दी शरद की बंसरी।

क्या हुआ ! जो रोज ही चक्कर हवा में काट कर
लौट आती बात मेरे पास मेरी बावरी।
क्या हुआ ! जो हर नज़र मेरे तरसते गीत की
रोज भरती है तुम्हारी ही शरण की भाँवरी।
क्या हुआ ! कुछ दी गयी तुमसे न अब तक भीख जो
रोज आती द्वार मँगती आस-टूटी झाँवरी।

क्या हुआ ! कुछ सोचने को जो न अब बाकी रहा
रिक्तता की पर्त मन में फैल दोहरी हो गयी।
क्या हुआ ! जो बुझ गयीं सब वर्तिकायें मंच की
कालिमा नेपथ्य की कुछ और गहरी हो गयी।
क्या हुआ अनुगूँज जो इतने बड़े विश्वास की
प्यार से वंचित प्रतीक्षा में सिमट कर सो गयी।

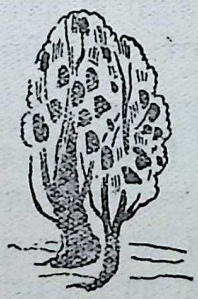

नारी

रूप की काया तुम्हारी स्वास्थ्य का परिधान सुन्दर,
है तुम्हारी झलकियों में मानिनी का मान सुन्दर,
तुम दिया की जोत-सी, तुम तो झमकते झूमरों-सी,
अप्सरा के गीत-सी, तुम तो किरण के नूपुरों-सी,
लहलहाते खेत-सी, उजले किलकते बादलों-सी,
तुम उदय की वायु में विह्वल विभा से द्रुमदलों-सी,
व्योम की मोती लड़ी चैती सितारों की कहानी,
तुम पिपासा की प्रणति में और भी लगती सुहानी !

:०:

किन्तु नारी सिर्फ नारी हो—तुम्हें मैं जानता हूँ,
तुम प्रणय की हो खिलाड़िन मैं तुम्हें पहचानता हूँ,
रह चुका हूँ मैं तुम्हारे साथ रंगिनि ! एक युग तक,
फागुनी निशि के नशे में नीम-सा पलकें झुका कर,
जब तुम्हारी छाँह-सी लगती बसन्ती चाँदनी थी,
पंख-से दो बाहुओं की चोट हलकी भी घनी थी,
तुम सदा गाकर जगाती हो हृदय की कोपलों को,
जानता हूँ मैं तुम्हारे सब नशीले चोचलों को !

:०:

तुम दिखा देतीं बिना आँसू रुलाई के नज़ारे,
पर न होते शेष चल पड़ते अगर आँसू तुम्हारे,
जानता दिल तोड़ने की शक्ति तुम में है भयंकर,
जोड़ देती हो वही तुम फिर क्षणों में मोम बनकर,

इन कुलेलों में न कोई रह गया मुझको प्रलोभन,
सूखकर निष्प्राण हैं सारे तुम्हारे ये प्रसाधन,
एक लम्बे तर्क-सी चलती बँधी, अनुकृति तुम्हारी,
फिर वही, फिर फिर वही, बस एक-सी तृष्णा तुम्हारी !

:o:

अब नहीं बीते दिवस मेरे तुम्हें झूला झुलाते,
काँपती उजली निशाओं में न वे संकेत आते,
पालती तुमको न निर्मलता हृदय का रस पिलाकर,
रह गयी दिल की न बेचैनी तुम्हारी सेज सुखकर,
अब न पलकों के कगारों पर टिकेगा मधु तुम्हारा,
किस नयी आसक्ति के बल पर मुझे तुमने पुकारा !
तरु-लता-सी जानतीं तुम गोद में गिरना हहर कर,
खेल जैसे हो बड़ों का प्रेम (बच्चों का नहीं पर) !

:o:

चाहता मैं एक नूतन देश का संवाद तुमसे,
चाहता मैं अब न बीती प्रियतमा की याद तुमसे,
चाहता मैं आज केवल आग, जलती आग तुमसे,
चाहता मैं अब न प्याली में सुरा-सा झाग तुमसे।
अग्नि की नव दीप्ति के रँग में रँगे आकाश से डर,
झाँकतीं क्यों बाँस की छतनार से तुम चाँद-सी झर।
कौन जीवन-मंत्र दूँगा मैं तुम्हारे चुम्बनों से,
नाग लपटों के निकालूँगा कहाँ से मधुकणों से !

प्यास लगने के बहाने

प्रेरणा में डूबकर मैंने तुम्हें हरदम उबारा
टूटकर दुख के प्रहारों से तुम्हें कितना सँवारा !
आस्था का रूप पहनाकर तुम्हें पूजा निरन्तर
कल्पना दासी तुम्हारी, बन गया विश्वास अनुचर।
रोज प्राणों में सँजोई दर्प की कुचलन तुम्हारी
रोज बिंधकर भी लहू की बूँद तक दिल ने न गारी।
रोज तुमको ही जिताकर बेबसी अपनी छिपाने,
गीत गाना चाहता मन गीत सुनने के बहाने।
रह गयी बाजी पिछड़कर, खत्म है अब खेल सारा
मैं स्वरों से ही न अब तक बूझ पाया मन तुम्हारा।
आज अटकी बात तुमसे पूछना अपराध लगता
अब तुम्हारे व्यंग में भी तो नहीं अनुराग जगता।
आज भी वैसी निरर्थक हैं तुम्हें मेरी निगाहें
व्यर्थ तुमको आज भी मेरी सहमती सर्द बाहें।
रोज तुमको जगमगा कर भी बुझन अपनी छिपाने,
याद आना चाहता मन याद करने के बहाने।
नाम होठों पर तुम्हारा—मैं किसी को भी बुलाऊँ
घोल गीतों में दिया क्या है जिसे मैं सह न पाऊँ।
जिन्दगी बेस्वाद बिलकुल आज अपनों में पराई
याद हैं मुझको तुम्हारी जन्म-जन्मों की जुदाई।
एक जीवित स्वप्न-सी हर रात में टूटी हुई जो
हर मरे दिन की सिसकती साँझ-सी लूटी हुई जो
लग गया चस्का नशे का, मन नहीं जो बात माने,
दर्द पीना चाहता मन प्यास लगने के बहाने।

स्वप्न और सत्य

स्वप्न है संसार, तो किस सत्य के कवि गीत गाए;
तोड़कर अपना हृदय किस सत्य की प्रतिमा बनाए ?

कौन-सा वह कौन-सा सुख, फूल को जो फल बनाता;
दूज का क्यों चाँद दौड़ा पूर्णिमा की ओर जाता ?
जागती पिक की कुहुक से प्राण में कैसी कहानी;
रूप स्वप्नातीत किसका रात कर देता सुहानी ?

गंध से आतुर समीरण, ज्योति से उमड़े सितारे,
स्नेह से फैली नदी, सौंदर्य से जकड़े किनारे,
लोच भर देतीं हवा में खेतियाँ क्यों लहलहाती,
जान पड़ जाती किरण में सुन खगों की क्यों प्रभाती?

स्वप्न हैं ये सब अगर, किस सत्य के कवि गीत गाए;
कौन सुषमा से बड़ा संदेश मानव को सुनाए ?

सो रहो !

सो रहो जल-पंखिनी ध्रुव ज्योति-लेखा स्नेह की
सो रहो जीवन-विजयिनी लग्न की सीमन्तिनी !
सो रहो शुक्रास्त में डूबे गगन की चंदना
सो रहो प्रति श्रोत के प्रति बिम्ब की अनुवर्तिनी !

सो रहो ओ ! दूर तक फैले अपार्थिव राग की
लयवती संचारिणी दीपक-शिखा अनिमेषिनी !
सो रहो निर्लिप्त तृष्णा के अनिद्रित स्वप्न ओ !
सो रहो अपरूप की सौगन्ध, रस-आवेशिनी !

सो रहो अनुगूँजते विश्वास के संदर्भ सब
सो रहो सुधि के दिशान्तों के निरुत्तर मरु-शिखर।
सो रहो जीवन-समर्पित आस्था की गीतियो !
चेतना की अर्चना के अर्थवाही दिव्य स्वर।

सो रहो जीवन-मरण के सम्मिलित आस्वाद ओ !
सो रहो गंतव्य तक छाये प्रतीक्षा के फणी !
सो रहो सूरज-महल की राह तकते बादलो !
सो रहो दुर्भाग्य के सहचर—प्रहारों के व्रणी।

सो रहो ओ दिग-दिगन्तों के अनाश्रित वंशधर !
सो रहो अनुतप्त मरुवन की अबोली सिसकियो।
रात की तन्मय निगाहों में तरसते तारको
स्तब्ध हत्या में टँगी जैसी पवन की हिचकियो।

सो रहो नदियो–समय के बैल की ओ घंटियो !
जन्मने को छटपटाती सर्जनाओ सो रहो
सो रहो ओ पारदर्शी प्यार की परछाँइयो
प्रेरणाओ–शून्यता की आत्माओ सो रहो !

विश्वास

एक ही विश्वास मेरी चेतना के पास,
एक—केवल एक निष्ठा की मुझे है आस;
अर्थ मिलता शब्द को—ध्वनि को गिरा की साँस,
एक ही विश्वास हरता है हृदय का त्रास।

तुम न दो कुछ और मुझको, मैं नहीं असहाय,
आस्था का बल जिसे है, वह नहीं निरुपाय;
आज गूँगे हों भले शंकित हृदय के भाव,
हो पड़ा मूर्छित कहीं अभिव्यक्ति का सब चाव।

हों पड़े छूँछे नये अभ्यास के आधार,
हो पुराने की विवशता आज मेरी हार;
पर जयी विश्वास मेरा, एक ही विश्वास,
दे रहा भवितव्य को जो शक्ति का उल्लास।

गति नदी को दे रहा, गिरि को गगन की राह,
एक ही विश्वास हरता मरुवनों का दाह;
है नहीं बिकता किसी भी मूल्य पर यह मौन,
इस गहन जीवन-क्रिया को मोल लेगा कौन?

तुम मुझे आश्रय न दो, मेरा अमिट आश्वास,
ज्ञान में वय में बड़ा मुझसे यही विश्वास;
योजनाओं में नहीं बँधता कभी संघर्ष,
आप ही अपना बनाता मार्ग नूतन वर्ष।

जी रहा हूँ व्रत यही में, पी रहा यह टेक,
है मिला विश्वास जीवन में मुझे बस एक,
अर्थ शब्दों को मिलेगा और रस को धार,
है नहीं मुझको स्वरों की वंचना स्वीकार।

छलिया चाँद

तुम तो छलिया चाँद, चकोरी के मन की कब जानते !
बरसाते रसधार गगन से, कब भू को पहचानते !
तुम ज्योतिर्मय गीत प्रणय के, नक्षत्रों के मीत हो ;
तरसाते धरती के स्वप्नों को तुम स्पर्शातीत हो।
मुँद-मुँद जाते नयन, चकोरी तुमको ही मनुहारती ;
साँस-साँस बन गई तुम्हारी ही पूजा की आरती।
बही जारही रात, तृषा से प्राण न भू के मानते ;
तुम निर्बंध पवन-से उड़ते, कब रज को पहचानते !

कर दो मुक्त, खोल दो बंधन अपने रूप-प्रकाश के ;
मेरे उलझे प्राण मुझे लौटा दो अपने पाश के।
कब से बँधी पड़ी हूँ मैं इस छवि के मोहन जाल में ;
और न जकड़ो मेरा अर्पित मन अपनी जय-माल में।
तुम निर्मोही चाँद, सदा गिरि-शिखरों को पहचानते ;
है यह किसका दोष, न जो तुम जलते मन को जानते

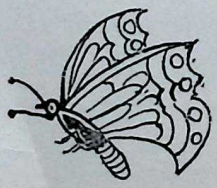

दीप-शिखा

★

तुम जलती हो तो छँट जाता मन के मेघों का अँधियारा,
तुम हँसती हो--मैं बन जाता सतरंगी किरणों का प्यारा
रूपपरी ! उतरी पड़ती तुम पंखों पर ले स्वर्ण-प्रभाती,
ज्योति तुम्हारी चितवन की मेरे मुख पर आभा ले आती ।
ओसभरी रजनी में पलकों के गीले हैं पत्र तुम्हारे,
अर्ध निशा की पुष्प-गन्ध से आकुल ज्यों दो नदी किनारे ।

झंझा के निर्मम झोकों में तुम कपूर-सी जलती जातीं,
जीवन-सागर की लहरें इस शशि के इंङ्गित पर रुक जातीं ।
मेरे मन की साध अनोखी, रुकता हृदय अधीर न मेरा,
भर-भर आता है सपनों से खोये हुए स्वरों का घेरा ।
मुझको ऐसे प्राण मिले क्यों जिनको सदा स्नेह की आशा,
तुम जलती हो--भर-भर आता मेरा हृदय युगों का प्यासा ।

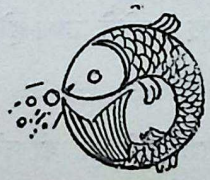

एक दिन

एक दिन मेरे नयन मुझको उलहना दे चले
चितवनें भरतीं तुम्हारी जिस प्रिया की भाँवरी,
मौन रह जाती तुम्हारी अर्चना पर, मौन क्यों ?
स्तब्ध संध्या-तारिका जैसे शिशिर की साँवरी।

एक दिन मेरे अधर बेचैन होकर कह उठे
है रची जिस रूप पर हर गीत की तुमने कड़ी,
शुष्क कातर मुख तुम्हारा देख चिन्ता से तपा
दृष्टि कब उसकी करुण ममतालु हो तुम पर पड़ी।

नाम की रट में रमे हम तो न अब तक पा सके
ओस-भीगी सेवती-सी सिक्त साँसों की महक,
है लचक जाती पवन के मोतियों की डार ज्यों
कुछ कँपीले कुछ लजीले उष्ण होठों की लहक।

एक दिन मेरे सहमते हाथ मुझ से कह उठे
घेर कर कब तक उसे हम यों रुके रह जाँयगे,
एक क्षण भी क्या न उसकी स्वप्न-संचित देह को
मुग्ध मन की अंजली के अर्घ्य से नहलायेंगे।

एक दिन मुझको अकेला पा हृदय कहने लगा
कब तलक सूनी तरसती धड़कनें पीते रहें,
एक भी तो गूँज उस छवि से छलकते मान की
आँक तक पाते न हम – कितने ढरे - रीते रहें।

एक दिन आजन्म-आनत शीश मेरा रो पड़ा
क्यों विभा अपने चरण नीचे बढ़ा देती नहीं,
मानता की छाँह में नित-नित नयी होती सदा
क्यों पुजापे की सुलगती प्यास ले लेती नहीं।

डा. दिल्ली राम रेवी
कल्याणी रेवी स्मारक
पुस्तकालय

शीर्षकहीन

मेरे बाद बहुत दिन जीना तब इन गीतों को पढ़ना !

जीवन में समझा न सका मैं तुमको दिल की अभिलाषा
अपने मृत प्रेमी से तुमको मिली न सपनों की भाषा ।
इन अशक्त आभाविहीन गीतों को तुम फिर से पढ़ना !
चिर निद्रा में डूबे मन की चोटी पर फिर से चढ़ना,
जिस पर जीवन भर तुमने की थी अरमानों की क्रीड़ा
जिसको लाल किये रहती थी सदा तुम्हारी ही व्रीड़ा !
कभी न सिहरीं इनको देख तुम्हारे होठों की कलियाँ
कभी न काँपी इनको सुनकर अलकों की मेघावलियाँ
एक बार इन स्वरविहीन गीतों को तुम फिर से पढ़ना !

तुम्हें लगेगा सब कुछ रहता वही, नहीं कुछ भी बदला ।
देह जली–पर जैसे सबका सब भीतर का नहीं जला ।
और जला जो––वह भी शायद नहीं बुझ सका सबका सब,
डूब गई हो भले धुएँली विस्मृति में खामोशी अब ।
तम में कोई ज्योति-शिखा जैसे मन से रिश्ता जोड़े
ज्यों अज्ञात दिशा में टूटा तारा चमके–मुँह मोड़े !
होता केवल प्यार अगर तो तुमसे सहा नहीं जाता
होता केवल दर्द अगर तो मुझसे कहा नहीं जाता ।
एक बार इन धूलभरे गीतों को तुम फिर से पढ़ना !

मत सोचो मत डरो कि मर कर भी तुमसे कुछ चाह रहा !
तुम्हें सदा नक्षत्रों-सा चमकाता मेरा दाह रहा

मत समझो मैं इन गीतों में मूक, अचंचल, दफ़नाया
तुमसे सुधि के नए कफ़न की भीख माँगने को आया।
बीते दिवसों-सा विस्मृत मैं, आगत-सा बेपहचाना
आशा और पिपासा का जैसे गूँथा ताना-बाना।
तुम मेरी इन अपत डालियों को बिलकुल मधु मत देना!
इनके आशय को छू-छूकर रस की साँस नहीं लेना!
एक बार केवल कुंठित पथराए गीतों को पढ़ना!

मुट्ठी भर मिट्टी में सब दिन तो मैं समा नहीं पाया
केवल बिछुड़न के डर से मैं कभी न तुमसे मिल पाया।
हैं ये वे ही गीत जिन्हें तुमने सुन्दर हर बार कहा
तुमको आँख बिछाए जिनमें नित्य प्रणय का ज्वार बहा।
तुम्हें मिले अब शायद इनमें कभी नहीं जो कहा गया
जो भीतर ही भीतर मुझसे झेला गया न सहा गया,
मरते दम तक नहीं चुका जिसकी मधु-मदिरा का मर्मर
चिर नीरवता में भी अंकित है जिसकी सौगात अमर।
मेरे फीके कुम्हलाए गीतों को तुम फिर से पढ़ना!
पीले-पीले धुन्ध मृत्यु के मुझे सदा को खा न सके
अपनी आकुल असफलता की अरथी मुझे बना न सके।
अक्सर रात गये नभ में कैसी मादकता छा जाती
किस करुणा की धार कहाँ फूटी जो मुझ तक बह आती।
इन्हें सत्य से अधिक मानना, इनमें मेरी जिजीविषा
आज भले मैं कहीं न होऊँ, इनमें मेरी नई दिशा।
जीवित है इनमें मेरे फिर से बनने की तैयारी
फिर से जागेंगी इनमें मेरी सूखी ऋतुएं सारी।
मेरे बाद सदा तुम जीना मेरे गीतों को पढ़ना!
इन अशक्त आभाविहीन गीतों को तुम फिर से पढ़ना!

कब कहा मैंने...

★

कब कहा मैंने तुम्हारे मान सब मेरे लिए हों,
मधुव्रता के मंजरित आह्वान सब मेरे लिए हों।
कब कहा मैंने कि मेरी बात ही तुम सत्य मानो,
–क्यों तुम्हारे स्नेह के वरदान सब मेरे लिए हों।

हो भले दो टूक मेरी चेतना तुमसे दरक कर,
कब कहा मैंने कि मेरे हों अकेले वे सभी स्वर,
जो तुम्हारे होंठ के रंजित कगारों से छलकते,
कब कहा मुझसे सदा गूंजे तुम्हारा मुग्ध मर्मर।

कब कहा मैंने मुझे मंजूर सारी छवि तुम्हारी,
कब कहा मैंने मुझी में शक्ति सहने की तुम्हारी।
कब कहा मैंने कि मेरा सब सफ़र कट जाय तुमसे,
कब कहा मैंने कि मुझको बंचना की छाँह प्यारी।

कब हुआ अभिमान मैं तोड़ूँ गगन का नील तारा,
स्वर्ग का सपना सजाकर रूप पाजाऊँ तुम्हारा।
कब न अपने से बड़ा माना तुम्हारा दर्प मैंने,
कब किया दावा कि मैंने ही सदा तुमको पुकारा।

कब कहा मैंने कि मेरा दर्द मेरा ही नहीं है,
हो गया विश्वास जो बेपर्द मेरा ही नहीं है।
कब कहा मैंने कि है मेरा छला जाना असम्भव,
कब कहा मैंने समर्पण सर्द मेरा ही नहीं है।

कब कहा मैंने कि यह पहचान दो दिन की अमर हो,
साँस इन बेहोश घड़ियों की न लौटे बेखबर हो।
कब कहा मैंने कि मेरी याद की बुझती शमा पर,
एक क्षण को भी तुम्हारी लाज की नीची नजर हो।

कब कहा मैंने कि जलकर चाँद छू लूंगा गगन का,
कब कहा मैंने कि बुझकर प्यार पा लूंगा पवन का।
इस तुम्हारे देव-दुर्लभ साथ का ले अर्थ उलटा,
कब किया सौदा नियति के साथ जीवन की जलन का।

कब कहा मैंने कि तुम हो भव्यता मेरे उदय की,
कब कहा मैंने कि तुम हो दिव्यता मेरे अभय की।
कब कहा मैंने कि मेरी भावना में तुम गड़ी हो,
कब कहा मैंने कि तुम हो मानता मेरी विनय की।

कब कहा मैंने कि मेरी आस्था से तुम बड़ी हो,
कब कहा मेरी धड़कती अर्चनाओं की लड़ी हो।
जन्म की जूठी प्रणति का पुण्य तुममें जी उठे फिर,
कब कहा मैंने कि तुम हर साँस के शव में जड़ी हो।

विपर्यय

★

नींद मेरी सो गई जाकर किसी की बाँह में
रात सब की सब किसी के कुन्तलों में बस गई,
रुक गई सहसा समय की साँस किस आकाश में
फिर किसी की याद आकर स्तब्धता को कस गई।

आज भी लेने न पाऊँगा बसेरा शून्य में
रिक्तता की छाँह भी इस देश में मृगजल बनी,
ऊब कर अकुला रही सिमटी समीरण में अवश
फिर दरकती धूप की कातर प्रतीक्षा अनमनी।

स्वप्न मेरे घुल गए जा कर किसी की गंध में
रूप-पंखी प्रेरणा किस सेज पर मँडरा रही,
हर कड़ी हर जन्म के गाए-अगाए गीत की :
किस प्रतीक्षित पुण्य में आकंठ डूबी जा रही !

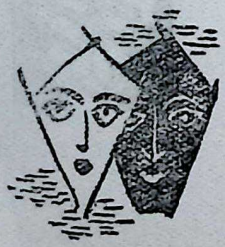

स्नेह इतना है कहाँ...

स्नेह इतना है कहाँ जो रात भर दीपक जले
इस क्षितिज से उस क्षितिज तक शारदी आभा झले
दाह तृष्णा का समेटे वर्तिका सूखी पड़ी
ज्योति की प्यासी शिखा सहमी अँधेरे में गड़ी।

स्नेह कितना पा सकेगा क्षुद्र मिट्टी का दिया
हर जलन के पर्व में अपने सहारे जो जिया,
सिर्फ जलने के लिए तरसा किया जो स्नेह को
ले पपीहे की रटन स्वाती-भरे हर मेह को।

हेम-मण्डित मणि-प्रदीपों का भरा श्रृंगार यह
हैं सभी अनुरक्त, विद्युत् मंच का अभिसार यह!
गर्व-तेजोद्दीप्त यह आलोक-शिखरों की सभा
है चतुर्दिक कौंधती ज्योतिष्क-पिण्डों की विभा।

स्नेह इतना है कहाँ जो जल सके यह साथ में
झिलमिलाना और बुझ जाना उसी के हाथ में,
जिस अलभ सुख ने जगाई प्रेरणा पाषाण में
जिन अनामा उँगलियों का स्पर्श उतरा प्राण में।

चुक चला है स्नेह के संग रिक्त जीवन का दिया
फिर अधूरा स्वाद ज्वाला का बुझन ने हर लिया,
रत्न-दीपों का प्रभा की लग्न में है रतजगा
भस्म कर सब स्नेह, मिट्टी का दिया बढ़ने लगा ।

आ गया छाहें तुम्हारी छोड़ कर

आ गया छाहँ तुम्हारी छोड़ कर इस छोर पर,
प्यार का चिर बेध सुधियों की अँजुरियों में भरे,
छोड़ कर धूपों-सहमती, तरु-शिखा पर काँपती–
वन-कपोती के बसन्ती बर्फ-जैसे दृग ढरे,
छोड़ कर शंकित दरकती सीपियों की चितवनें,
दीप्ति की अंतिम लचक के धुंध पीले अधगरे !

आ गया कुण्ठित तुम्हारे मूक वचनों में बंधा;
मौन मेरा है तृषित जल से भरी दो बात को,
बाँध दी जिसने सदा को गाँठ टूटे धैर्य की
दे रहा आकाश जो इस अर्थ के आघात को,
आ गया पथ के बदलते दृश्य पीछे छोड़ कर
छोड़ कर जलरेख-जैसी काँपती सौगात को !

आयु का रथ गिर गड़ा मूर्च्छित समय की रेत पर,
किन्तु इतनी दूर जाने किस तरह मैं आ गया;
बीतते दुःस्वप्न-जैसी हर दिशा को चीर कर––
शून्य के इस गुंजलक का दंश मुझ पर छा गया;
घूमते शनि-सा विवशता की नसों में फूट कर
मंत्रिता अनुभूति की सब कतरनें फैला गया !

मैं तुम्हारे टूटते प्रण की लपट लाया चुरा,
चिह्न अपने लिए वापस तुम्हारी चाह के;

है जहाँ की ज्योति, मिट्टी, वायु तक तुम से परे;
रोज चक्कर काटता हूँ इस अकल्पित राह के,
जेल में गाए गए, ठिठके दिवस के गीत-सा;
गूँजता कुछ चेतना के पारदर्शी दाह में !

प्रेरणा के व्यंग्य में रह-रह अकारण जागती
अधटँगे उत्सुक नयन की म्लान संधानी शिखा,
वृत्त काली बालुका का वंचना की कौंध-सा :
तिलमिलाती भ्रान्ति का आख्यान जिस में अनलिखा,
दूर की पहचान के छूते हुए लघु पंख-सा——
कुछ अबाधित रिक्तता के मूल्य के भीतर दिखा !

छोड़ कर छाँहें तुम्हारी आ गया इस छोर पर,
इस अदर्शन की कटीली बाहुओं के पाश में :
खा रहा जैसे मुझे विश्वास मेरा ही सतत——
इस अजीवन के धधकते दानवी उपवास में;
मैं सृजेता की तजी सन्तान पथ-विच्युत; विमुख
अतिक्रमित हूँ इस खुले ताबूत-से अवकाश में !

भूल जाने दे

❀

भूल जाने दे मुझे अपनी समूची कल्पना
बादलों का घूंट पी पीकर बनी जो चाँदनी,
भूल जाने दे परागी तारिकाओं की विभा
गंध जिनसे आ रही है चिर प्रतीक्षा की घनी;
बीतते मधुमास के बहते खिंचे जलस्रोत में
भूल जाने दे सिमटती छाँह सुख की अनमनी।

वंचनाओं के जुलूसों में सदा को खो गई
भूल जाने दे चरण-रेखा विगत के प्यार की,
सृष्टि सारी काँपती जिसकी पिघलती नींद में
एक दुबली-सी किरण तम के उसी मँझधार की;
भूल जाने दे पुकारें गूँजती प्रच्छन्न सद
आ रहीं सुधि की गुफा से टूटते अभिसार की।

भूल जाने दे कभी लहरा उठी जो चाव से
रूप की मधुता पराजित अनुक्षणों से भागकर,
गीत जैसी छा गई चारो दिशाओं की महक
अर्थ जैसे खुल गए हर भंगिमा के जागकर;
भूल जाने दे रुके तब से पड़े उस अश्रु को
हो गया बेस्वाद जिसका सूखकर आशय प्रखर।

लीन हो होकर समय के मूल में जो चुक गई
भूलने दे पुण्य के प्रत्याफलन की दिव्यता,

अस्थिपंजर ही बचा है जिस सजीले स्वप्न का
भूल जाने दे रुँधी हर साँस को उसका पता;
रात बुझती जा रही है हर दिये के स्नेह की
भूलने दे ज्योति की बीती शिखा की भव्यता।

भूल जाने दे मुझे मैं जी रहा जो वह सभी
अनलिखा ही जो सदा मन पर किसी के रह गया,
चिर तृषा को तृप्ति की देकर छली संज्ञा सदा
स्तन्य जो मरु की असंभव बदलियों से बह गया;
भूल जाने दे सभी आकाश की माया-मृषा
पूजने में ही जिसे सम्भाव्य सारा दह गया।

भूलने दे वह सभी अब तक न जो भूला गया
कण्ठ का हारिल उसी स्वर को सहजे प्राण में,
मधु-प्रवंचित प्रेरणा की सारिका बन्ध्या हुई
शेष जीवन कुछ नहीं जैसे किसी उपमान में;
भूल जाने दे—अस्वीकृत आस्था के शिल्प से
रच गई जो रसवती अन्तर्शिखा प्रतिगान में।

ओ नवग्रह के मनवन्तर !

ओ नवग्रह के मनवन्तर ! दीपों के कलश उठाओ
प्रतिकल्पी आलोक ! धरा को ज्योति-कवच पहनाओ।
मिट्टी के कोरे सपनों को रक्तारुण रँग जाओ
नव नछत्रलोक के जन्मान्तर ! आकाश जगाओ।

अंधकार के धीमे जल में रुके काल के ये क्षण
ओ जीवन की ऊर्ध्व शिखे ! करते तेरा अभिनन्दन।
रवि के सोये सप्त-वर्ण सप्तर्षि ! तुम्हारा वन्दन
दिग्-दिगन्त की गिरि-चूड़ा की ज्वाला का अभिवादन।

तम के बिम्बजाल में उतरो ओ अरश्मि लोकान्तर !
मुद्रित गंध-गर्भ में जागो ओ प्रदीप्ति के सुन्दर !
फूटो फूटो काली छायाकृतियों में रूपंकर
जागो हे विश्वास विभे ! तम की स्नेहाकुलता पर।

ओ मरुतों के दिव्य पान्थ ! द्वाभा के चरण बढ़ाओ
अंशुवान अंगारक ! द्युति के यज्ञ-कुण्ड बन जाओ।
तम की अकृत अव्यंजित प्रतिलिपिकाओ ! लौ लहकाओ
ओ आह्वानित कल्पान्तर ! दीपों के कलश उठाओ।

डा. जिलो एण्ड रेमी
स्वाधी ३५४२
जगाधरी

Reg 837
25 R 23

आपके
उपयोग और रुचि की
नई और उत्कृष्ट पुस्तकें
आपको घर बैठे,
मिल सकती हैं—
कृपया
अपना पूरा पता हमें शीघ्र
लिख भेजें।
हमारी वृहत् सूची आपको
नियमपूर्वक मिलती रहेगी।

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
पो. बॉक्स नं. ७०, पिशाचमोचन
वाराणसी--१

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

पो. बॉक्स नं. ७०, पिशाचमोचन

वाराणसी-१

क. मुद्रक : विद्यामन्दिर प्रेस (प्रा.) लि., मानमन्दिर, वाराणसी-१

प्रत्यक्ष की मटकी किरण : यात्रावली ● 'मुंच'

मूल्य 3 रुपया